# नारी : गृहलक्ष्मी और कल्याणी

लेखक

**श्री रामनाथ 'सुमन'**



प्रकाशक

**साधना-सदन**

इलाहाबाद ।

ढाई रुपये

प्रकाशक

साधना सदन, प्रयाग

सितम्बर १९४६

अगस्त १९४८

—०—

## सुमनजी की अन्य पुस्तकें

० गृहस्थ-साहित्य ०

| | | |
|---|---|---|
| १. | आनन्द निकेतन | २॥) |
| २. | घर की रानी | १।) |
| ३. | भाई के पत्र | ३) |
| ४. | कन्या | १।) |
| ५. | नारी-जीवन : कुछ समस्याएँ | १।) |

—:०:—

मुद्रक

बी० के० शास्त्री,

ज्योतिष-प्रकाश प्रेस, बनारस सिटी।

# पूर्व वचन

आज जब सभ्यता अपने मारक और विषैले वातावरण से घुट-घुटकर मर रही है और मानवता मृत्यु की एक भयंकर निशा का अन्त होते ही पुनः राष्ट्रों के परस्पर खम ठोंकने से अधीर और त्रस्त हो रही है, तब मानवसमाज एवं संस्कृति के निर्माण-कार्य में नारी का उत्तरदायित्व और भी गम्भीर हो गया है। इस मृत्यु-मुग्ध पशुता-प्रधान पुरुष वर्ग को पुनः प्रेम और सौख्य के शासन में लाने का गुरु भार उसके कंधों पर आ पड़ा है। बढ़ती हुई हिंसक वृत्तियों के युग में अपने हृदय के स्नेह से उसे एक नूतन जाति का निर्माण करना है—वह जाति जो तुच्छ एवं संकुचित भेदभाव से ऊपर उठकर—भ्रातृत्व के बंधन की उच्चता का सन्देश दुनिया को देगी और मानव मात्र के बीच साम्य और सुखकर सम्बन्धों की घोषणा करेगी।

यह तभी संभव है जब नारी अपने को पहचाने; मानव जाति की विकास-धारा में उसका जो 'रोल'—नियुक्त कार्य है, उसे समझे, जब वह अपने उस रूप के दर्शन करे जिसमें वह गृहलक्ष्मी और कल्याणी है, जिसमें उसने संतप्त, तृषित जग को प्रेम के अमृत से सींचा है; जिस रूप में वह सतत अन्नपूर्णा है—मानव को जीवन देने और उसका पोषण और संवर्द्धन करने वाली देवी!

मैं बहिनों का एक भक्त और अनुचर हूँ। मैं उनको पीड़ित, दुखित नहीं देख सकता पर मैं यह भी नहीं देख सकता कि मनुष्य जाति को सभ्य और संस्कृत करने में उसने युगों से जिस गौरवपूर्ण परम्परा की सृष्टि की है उसे वह भूल जाय। मैं चाहता हूँ, वह अपने मृदुल स्नेहदान से हमारे गृहों के टिमटिमाते और बुझते से जीवन-

दीपों को पुनः प्रकाशित कर दे जिससे वह धुँआ, जो हमारा दम घोट रहा है, खत्म हो जाय और हमारा संयुक्त जीवन पुनः अप्राकृतिक एवं बोझिल वातावरण से ऊपर उठकर शुद्ध, मुक्त, निर्मल एवं स्वस्थ क्षितिज पर प्रकाश-पिण्ड सा उदय हो; एक बार फिर हृदय हृदय से बोले—वह बोली जिसमें शब्द नहीं होते पर अप्रतिहत शक्ति का स्पन्दन होता है। हमारा गृहस्थ जीवन पुनः व्यापक एवं उदार अनुभूतियों तथा प्रेरणाओं पर आश्रित समाज-जीवन की नींव-रूप में उपस्थित हो।

'नारी' में नारी के इसी कल्याणी स्वरूप की एक झलक है। मानवजाति के जीवन में उसका क्या कार्य है और कैसे वह अपने इस कर्तव्य की पूर्ति कर सकती है, कैसे वह स्वयं सुखी होगी और अपने जीवन-साथी को सुखी करेगी; कैसे दाम्पत्य जीवन सफल होगा, इसी की चन्द बातें। बातें वही पुरानी हैं, छोटी हैं जिन्हें हम जानते हैं पर ध्यान नहीं देते। जो सत्य है वही मैं दुहराता हूँ,—कोई नया सत्य पैदा करने का मेरा दावा नहीं पर मैं बहिनों से कहूँगा कि मेरी बातों पर ध्यान दें, बहुत करके वे सुखी होंगी।

प्रयाग
६-९-४६

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

## 'नारी' का संसार

---

*

# नारी

गृहलक्ष्मी
और
कल्याणी

# फूल बनती हुई कली

पौधे की बाहों में झूलती हुई, पत्तियों के बीच ज़रा-ज़रा-सा सिर निकाले जुही की कली को तुमने देखा है? हवा इठलाती आती है और उसे चूमकर चली जाती है। भौंरे आते हैं और उसके कानों में मानों कुछ गुप्त सन्देश गुनगुना कर चले जाते हैं, तितलियाँ आती हैं, क्षण भर नाचती और रिझाती हैं, फिर अन्यत्र चली जाती हैं; सूर्य की किरणें उसे गुदगुदाती हैं और रात में चाँदनी उस पर हँसी बखेर देती है। और कली है कि मानो शर्माई हुई-सी, अपने ही मृदु गन्ध में विभोर, दुनिया की आँखों से अपने को छिपा लेना चाहती है--और जब कोई नहीं होता तो इधर-उधर झाँक लेती है।

**वह कली!**

कुछ ऐसी ही अवस्था उन लड़कियों की होती है जो बचपन की सीमा पारकर किशोरावस्था में पाँव धरती हैं। अचानक बचपन की चंचलता जैसे कहीं उड़ गई हो; उसकी जगह एक रहस्य, एक हलका नशा प्राणों में भर रहा है। लज्जा गालों को गुलाबी कर जाती है। ओठ अब पहले की तरह नहीं खुलते; खुलते-खुलते रह जाते हैं। आँखों में किञ्चित हँसी है पर वह खिलखिला नहीं पाती—कुतूहल और प्रश्न ने उसे अपनी गोद में छिपा रखा है। उड़ते हुए स्वप्न आते हैं, जिनका अर्थ समझ में नहीं आता। एक अद्‌भुत मिठास, जिसमें हलकी-सी बेचैनी है, अनुभव होती है। दुनिया नई-नई-सी लगती है। मन कुछ खोजता है पर जानता नहीं कि क्या खोजता है।

**कली-सी लड़कियाँ**

कली जैसे अन्दर से फूटकर विकसित होने लगती है, वैसे ही कुमारी में नारीत्व का विकास होता है। १४–१५ वर्ष के आस पास, मन में, और शरीर में, भीतर और बाहर, परिवर्तन होने लगता है। यह एकांत-प्रेम, यह गम्भीरता, यह मन में भरता एक नशा—यह कुतूहल, यह हलका-हलका गुंजन किसी प्राकृतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए है। समझ लो कि यौवन आ रहा है और उसके दूत तुम्हारे हृदय-द्वार पर थपकियाँ दे रहे हैं। तुम शर्माती हो पर जो संदेश बेतार के तार द्वारा तुम्हारे हृदय में खट-खट कर रहे हैं, उन्हें सुनना ही होगा। सुनना होगा और समझना होगा।

**यौवन के दूत आ रहे हैं !**

× × ×

समस्त जीवन एक प्रवाह है। वह कहीं रुकता नहीं। जहाँ रुकता दिखाई देता है तहाँ भी रुकता नहीं; नये रूप और नई धारा में बदल जाता है। पानी की धारा के समान, जो कहीं खुले स्रोत में ज़मीन के ऊपर बहती है और कहीं पृथ्वी के स्तर के नीचे चली जाती है, यह जीवन भी कहीं प्रकट है, कहीं गुप्त है। इसीलिए मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है, एक नया आरम्भ है या यह कि वह अन्त भी है, आरम्भ भी है। वृत्त या घेरे में जैसे आदि और अन्त नहीं है, तैसे ही जीवन में भी आदि अन्त नहीं या सर्वत्र आदि और अन्त है! जीवन की उपमा, इसीलिए, मैं वृत्त (सर्किल) से दे रहा हूँ।

**जीवन एक वृत्त है**

यह होते हुए भी सबके जीवन-वृत्त की रेखाएँ सर्वत्र स्पष्ट और उभरी हुई नहीं होतीं। अपने हाथ से हम अपनी जीवन-रेखा मिटा देते हैं। अज्ञान-वश, अपनी ज़िम्मेदारियों और कर्तव्यों को न जानने-समझने के कारण, हमें प्रायः दिशा-भ्रम हो जाता है; हम रास्ता भूल जाते हैं और जीवन-वृत्त दूषित, श्रीहीन, प्राणहीन हो जाता है। मानव-जीवन अपने आदर्श से गिर जाता है, वह अपने स्वार्थ की सीमा में संकुचित होकर रह जाता है। जीवन जीवन की सृष्टि नहीं कर पाता, या कर पाता है तो एक शक्तिहीन, मृतप्राय जीवन की। भविष्य के प्रति अपना सन्देश और अपना कर्तव्य भूल जाता है।

मानव-जीवन का वृत्त स्त्री और पुरुष दोनों के सहयोग से पूरा होता है। दोनों का, उसमें, समान भाग है। जैसे दो समान अर्धवृत्त

मिलकर एक वृत्त बनाते हैं तैसे ही पुरुष और स्त्री मिलकर पूर्ण मानव-जीवन की रचना करते हैं। जल-प्रवाह के बँध और संकुचित हो जाने से जैसे पानी दूषित हो जाता है, उसमें से स्वास्थ्यवर्द्धक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार जीवन में अनुचित दबाव और बन्धनों के कारण दोष उत्पन्न हो जाते हैं; उसकी स्वाभाविक शक्ति का लोप हो जाता है। सुखी और स्वाभाविक जीवन दुःख और कराह से भर जाता है। मार्ग पर चलते हुए प्रत्येक पग पर थकावट का अनुभव होता है।

**वृत्त के दो भाग**

जहाँ भी सृष्टि और जीवन है तहाँ स्त्री-पुरुष ये दो वर्ग हैं। समस्त चेतन सृष्टि अथवा जीवन दो भागों में विभक्त है। जो सर्वत्र है वही मानव-जीवन में भी है। स्त्री और पुरुष का यह भेद न केवल दोनों की शरीर-रचना में है वरन् उनके मानसिक गठन में भी है। दोनों की जननेन्द्रियों तथा स्तन की बनावट अलग-अलग है तथा स्त्री में गर्भाशय की अधिकता के कारण यह भेद बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। यह भेद या अन्तर ऐसा है कि दोनों के समस्त जीवन तथा प्रेरणाओं को प्रभावित करता है। जीवन की रचना और पूर्णता के कार्य में दोनों की देन तथा कार्य अलग-अलग हैं। उनकी समस्त जीवन-दृष्टि ही अलग-अलग है। इन्हीं कारणों से दोनों का मानसिक विकास भी दो प्रकार से हुआ है और, सामूहिक रूप से, दोनों में भिन्न-भिन्न गुणों और विशेषताओं का जन्म और विकास हुआ है।

**सृष्टि के दो भाग**

इसलिए आज यह बहस कि दोनों में कौन बड़ा है, निरर्थक है। इसे सुनकर मुझे हँसी आती है। सम्पूर्ण कुतर्कों की भाँति ये बातें केवल सत्य का मुँह ढकने के लिए कही जाती हैं और अनुचित अधिकार तथा स्वार्थ की रक्षा एवं पोषण ही इनका उद्देश्य होता है। अनादि-काल से हमने माता की पूजा की है। हमारे यहाँ उसे आद्या शक्ति—समस्त शक्ति का आदि स्रोत—माना गया है। ऋषियों ने 'मातृदेवो भव' कहकर उसकी वन्दना की है, और उसके बाद 'पितृदेवो भव' का स्मरण किया है। पर इन बातों को जाने दीजिए। वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो दोनों में से न कोई बड़ा है, न छोटा, दोनों बराबर हैं। दोनों का समान महत्त्व है। संसार की रचना में दोनों के अपने-अपने, पर प्रायः एक से महत्व के, कर्त्तव्य और कार्य हैं। एक दूसरे के बिना अधूरा है, पंगु है। दोनों के संयोग में जीवन की पूर्णता है। एक के बिना दूसरा अपना कार्य, अपना प्राकृतिक सन्देश पूरा नहीं कर सकता। पशु-पक्षी, वनस्पति जहाँ भी चेतन जीवन का प्रसार है, सर्वत्र उसकी स्थिति और विकास दोनों के संयोग से है।

**पुरुष और नारी**

पुरुष जीवन का कठोर अतः रक्षक तत्व है; स्त्री जीवन की मृदुल अतः विकासक शक्ति है। पुरुष में तेज है; स्त्री में स्नेह है। पुरुष में साहस है; स्त्री में विश्वास और श्रद्धा है। पुरुष अधिकार है; स्त्री भक्ति है। पुरुष बल का शंखनाद है; स्त्री ममता की वीणा है। पुरुष ने लड़ाइयाँ लड़ीं, मैदान जीते, राज्यों की सृष्टि की, समस्याएँ पैदा कीं, स्त्री ने उसकी कठोरता को अपने

स्नेह, सेवा, श्रद्धा, ममता और वात्सल्य से शासित और संयमित किया। शताब्दियों के विकास--मार्ग में चलते हुए मानव-जाति ने जो कुछ कमाया है उसमें तेज, ओज, वीरता, संघर्ष शक्ति, ज्ञान, साहस पुरुष की देन है; स्नेह, श्रद्धा, विश्वास, आत्म-बलिदान, कोमलता नम्रता, भक्ति और आत्म-निवेदन स्त्री की देन है। पुरुष जो कुछ नारी को देता है, नारी अपने प्राण के रक्त मे सींचकर उसे बढ़ाती है और उसे बढ़ाकर, पुष्ट कर समाज को दे देती है।

**सहयोग ही जीवन का आधार है**

तब यह है कि जीवन के स्वाभाविक विकास के लिए दोनों में स्वाभाविक सहयोग की आवश्यकता है। जब मैं स्वाभाविक सहयोग शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तब मेरा आशय यह है कि वह सहयोग बिना किसी अनुचित दबाव के, अपनी इच्छा और हृदय की समस्त भावना के साथ, होना चाहिए। और सच पूछें तो सहयोग दबाव और बलात्कार से हो नहीं सकता। जहाँ हृदय नहीं है, तहाँ सहयोग भी नहीं है। जहाँ किसी विशेष स्वार्थ की पूर्ति के लिए ऊपर से दिखावा है तहाँ विकार मात्र है और समाज उस अवस्था में अधिक दिनों तक चल नहीं सकता। आज नारी और पुरुष में स्वाभाविक और हार्दिक सहयोग का प्रायः लोप हो गया है। पुरानों में नारी का सहयोग बहुत-कुछ यांत्रिक और परम्परागत है। उसमें एक प्रकार की विवशता है। वहाँ नारी शोषिता है। उसका समस्त जीवन एक प्रकार की जड़ता--निश्चेष्टता से पूर्ण है। वह अपनी शक्ति, अपने कार्य, अपने आदर्श का जीवित स्पर्श अपने

अन्दर अनुभव नहीं कर पाती । वह अपनी असीम क्षमता को भूल गई है । मातृत्व की गरिमा और ओज, तथा मानव की माता होने के गौरव के प्रति वह आत्म-विस्मृत है । फौआरे का मुँह बन्द है और समस्त जल-स्रोत रुद्ध होकर अपना पोषणकार्य करने में असमर्थ है । आज भी उसमें वही बलिदान और आत्म-त्याग की क्षमता है; आज भी उसमें वही शाश्वत स्नेह है; आज भी अपने को देकर सब कुछ पा लेने की सहज वृत्ति है पर यह उसके अपने प्रति अचेत हो जाने तथा अपने को दासी, पदच्युत, शक्तिहीन समझ लेने के कारण जैसे शिथिल और अर्थहीन हो गया है । ममता और स्नेह की असीम संभावनाएँ और शक्तियाँ, उसके बन्द हृदय-द्वार के अन्दर, रुद्ध होकर छटपटा रही हैं और दम तोड़ रही हैं । करती वह सब कुछ है पर जैसे अभ्यास-वश; शरीर के पीछे मानो हृदय का तेज नहीं है । उत्सर्ग आज आत्म-हत्या के आलिंगन में है ।

जैसे पुरानों में नारी अपनी शक्ति के प्रति विस्मृत अतः शोषित है तैसे ही नयों में पुरुष अपने ओज और कार्य को भूल गया है । वह

**यह मूर्छित पुरुष**

पुरुषार्थ और पुरुषत्व से च्युत, नारी की रमणीयता-मात्र का इच्छुक, उसके रूप पर आसक्त, अपनी शक्ति भूलकर अनुचित सीमाओं तक जाने को तैयार है । यहाँ नारी उसका शोषण करती है । वह परिश्रम करता है, जीविका के युद्ध में वह अकेला अपना रक्तदान करता है, जीवन की चट्टानों पर चलते हुए अगणित ठोकरें खाता है । वह उपदेशक और ज्ञान-

दाता भी है पर आज उसके कार्यों में स्वाभाविकता और संतुलन नहीं। मूर्च्छित, विवशता से भरी वाणी में बोलनेवाला यह पुरुष जीवन के कोल्हू ( तेल की चक्की ) में जुते उस बैल के समान है, जिसकी आँखों पर पट्टियाँ बँधी हैं और अपने अज्ञान में जिसे चलना ही चलना है।

न पुरुष के लिए, न स्त्री के लिए यह कोई शोभा की बात है। दोनों अपने उचित स्थान से हट गये हैं। दोनों भूल गये हैं कि जैसे समस्त जीवन की, वैसे ही मानव की, सृष्टि और विकास दोनों के स्वाभाविक, चेतन और स्वेच्छाकृत सहयोग पर निर्भर है।

यह स्वाभाविक और चेतन सहयोग तभी हो सकता है जब पुरुष सच्चा पुरुष और नारी सच्ची नारी बने; जब दोनों जीवन के कार्य में अपने-अपने कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों को समझें और ईमानदारी के साथ उन्हें पूरा करने का यत्न करें।

**सच्चा पुरुषार्थ**

सच्चा पौरुष ओज से भरा हुआ, कठिनाइयों की चट्टानों को पदाघात से चूर कर देने की अपनी शक्ति में निष्ठा रखते हुए, पीड़ितों पर अपनी भुजाओं की छाया का विस्तार करता चलता है। वह नारी के प्रति हृदय-दान इसलिए करता है कि उसके हार्दिक सहयोग से ही जीवन में पूर्णता आ सकती है और समाज का वास्तविक लाभ हो सकता है, इसलिए नहीं कि नारी का रूप क्षणभर की दिल्लगी की चीज़ है। सच्चे पुरुषार्थ में दीनता नहीं; आत्म-विस्मरण नहीं है। वह भिक्षा नहीं माँगता, अपने सबल पंजों से ले

लेता है। वह कठिनाइयों के बीच हँसता है और जब जीवन का क्षितिज अन्धकार से भरा हो, बादल छा रहे हों, प्रतिकूल हवाएँ चल रही हों, मित्र और साथी दूर पड़ गये हों, मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा हो, सूझता न हो तब उसका अविचल आत्म-विश्वास कड़कड़ाकर अपनी शक्ति की घोषणा करता है; तब उसकी आँखों में बिजलियाँ कौंधती हैं, बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और मार्ग प्रकाश की किरणों में निखर जाता है।

--और सच्चा नारीत्व अपने कभी न समाप्त होने वाले—चिरन्तन--आत्मदान की घोषणा करता है। अनादि काल से उसने दिया हो दिया है। उसका दान कभी समाप्त नहीं होता। नारी देकर अपने को पाती है। वह झुककर विजय करती है। तलवार की धार उसके प्रेम—स्रोत के आगे कुण्ठित और विवश है। जीवन में पुरुष की कठोरता को उसने अपनी स्नेह—मृदुल उँगलियों से सहलाया है; जंगली, उद्धत, बाधा-बन्ध-विहीन पशु को उसने पालतू किया और धीरे-धीरे उसमें दूसरों के प्रति उदार, प्रेमल, हृदय की संभावनाओं के प्रति विश्वस्त मानव का विकास किया। लड़खड़ाते हुए, परमुखापेक्षी शिशु को अपने रक्त और दूध से उसने शक्तिमान बनाया। उसने पुरुष को वह दिया जो उसके पास नहीं था अर्थात् जीवन में स्वप्न-दृष्टि, आदर्श, संस्कृति।

**सच्चा नारीत्व**

कौन कह सकता है कि उसने मानव-समाज के विकास में **पुरुष** से कम भाग लिया है? कौन कह सकता है कि उसके कार्य, उसके आदर्श, उसकी ज़िम्मेदारियाँ पुरुषों के कार्यों, आदर्शों और ज़िम्मे-

दारियों से कम महत्व की हैं? कौन कह सकता है कि एक दूसरे का स्थान लेगा?

मैं पूछता हूँ कि तब नारी क्यों पुरुष बनना चाहती है? क्या पुरुष बनकर वह अपने को खो न देगी? क्या इससे मानव-सभ्यता की धारा का मार्ग अवरुद्ध न होगा? क्या नारी का कार्य और आदर्श हीन है? क्या पुरुष के पथ का अन्धानुकरण नारी को सक्षम करेगा?

स्पष्ट है कि ये सब ग़लत बातें हैं। व्यक्ति, समाज, जाति, देश और मानवता के अभ्युदय के लिए जहाँ पुरुष को सच्चा पुरुष बनना है तहाँ नारी को सच्ची नारी बनना है। दोनों के शरीर, अतः मन की वृत्तियों में भी, जो भेद हैं वे अत्यन्त प्राकृतिक और मौलिक हैं। उन्हीं में दोनों की समस्त जीवन-दृष्टि का बीज है; उन्हीं में दोनों का अपना-अपना रहस्य है। जिसे अंग्रेज़ी में 'सेक्स' कहा जाता है और जिसे हमारे यहाँ लिंग-भेद, योनि-भेद इत्यादि नामों से पुकारा गया है, वह एक बाह्य शरीर-भेद मात्र नहीं है जिसका बनावटी शिक्षा या प्रयत्नों से लोप किया जा सके; समस्त जीवन इस भेद या अन्तर से नियन्त्रित और शासित है। यह अन्तर समस्त जीवन का अन्तर है और यह भेद जीवन तथा जीवन की सृष्टि के रहस्य से भरा हुआ है। संसार की कोई शिक्षा और कोई शक्ति उसे निर्मूल नहीं कर सकती; हाँ, विकृत करके अनर्थ कर सकती है।

**भेद मौलिक हैं!**

इसलिए बेटियो, मैं तुमसे कहूँगा कि तुम जब भीनी-भीनी मृदुगंध

से भरने लगा हो, जब कली में भीतर ही भीतर पराग एकत्र होने लगा है और वह खिलकर फूल बनने के मार्ग पर है, तब तुम यह भलीभाँति समझ लो कि तुम्हारे शरीर और मन में पुरुष से जो अन्तर है वह अकारण नहीं है; उसका एक महान् अर्थ है और लड़की होने के कारण, नारी-जन्म के लिए, तुम्हें किसी प्रकार लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है; उलटे अपने हृदय में तुम्हें गौरव-बोध करना है कि तुम्हें नारी होने के कारण, मानवजाति की माता होने का, समाज की जीवन-धारा को बराबर क़ायम रखने का अवसर और उत्तरदायित्व दिया गया है। क्यों तुम संकुचित हो? क्यों तुम लड़कों के सम्मुख अपने को हीन मानती हो? क्यों तुम्हारे मुख पर आत्म-गौरव का प्रकाश नहीं है? क्यों तुम्हारी आँखें आत्म-विश्वास के प्रकाश से पूर्ण नहीं हैं? विश्वास और साहस के साथ तुम निश्चय करो कि तुम आदर्श नारी बनोगी और तुम्हारे जीवन में नारीत्व का 'मिशन'—उद्देश्य—सार्थक होगा।

**यह अन्तर अकारण नहीं है**

प्रकारान्तर से मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि स्त्रीत्व का रहस्य क्या है? स्त्री-पुरुष के शरीर की बनावट में जो भेद है और जिसे 'सेक्स' या 'लिंग' कहा जाता है, उसी पर नारी के समस्त जीवन की उठान निर्भर है; उसी के प्रति सजग रहने पर उसकी व्यक्तिगत उपयोगिता और सुख निर्भर है। मैंने जान-बूझकर उपयोगिता को सुख के पहले रखा है। मैं जानता हूँ कि यौवन में यह क्रम अच्छा नहीं लगता। वहाँ सिवाय आनन्द

**'स्त्रीत्व' का रहस्य**

के और कुछ सूझता नहीं है। चारों ओर हरियाली दीखती है; हृदय में रस की वर्षा होती है; कर्तव्य और आदर्श की बातें कुछ बहुत अच्छी नहीं लगतीं। मन उड़ा-उड़ा जाता है। यह सब स्वाभाविक है। आनन्द जीवन की स्वाभाविक वृत्ति है; यही उसका गन्तव्य स्थल है। इसलिए तुम्हारे मन में सुखी होने का जो स्वप्न है, वह स्वाभाविक है। पर यह जो मधुयामिनी-सी, स्वप्नों की छाया पर चाँदनी के आवरण में आनेवाली जवानी है इसकी और इसके आनन्द की रक्षा के लिए ही कुछ कर्तव्य हैं, कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं। आनन्द के लिए ही उपयोगिता को अपनाना होगा। यदि तुम अपने लिए और समाज के लिए उपयोगी नहीं बनोगी, उपयोगी जीवन न बिता सकोगी तो यह चुहलबाजी, यह आनन्द की लालसा एक दुःस्वप्न की भाँति तुम्हारे समस्त जीवन को भय से पूर्ण कर देगी। फूलों में काँटे भी होते हैं और कभी-कभी उनका पराग कीटाणुओं से पूर्ण होता है। सुख के नशे में बेसुध मत हो। प्रवाह में अपने को मत छोड़ दो। यदि तुमने भूल की और अपने व्यक्तिगत सुख और किशोरावस्था के प्रथम उच्छ्वास में अपने कर्तव्य, नारी-जीवन के रहस्य और लक्ष्य को भुला दिया तो याद रखो, सच्चा सुख तुम्हें कभी प्राप्त न होगा, न समाज को तुम अपनी श्रेष्ठ संस्कृति का दान कर सकोगी। क्षणिक निजी तृप्ति को कभी अपना लक्ष्य न बनाओ।

**वह लुकाछिपी करती आरही जवानी !**

सबसे पहली बात तुम्हारे लिए यह है कि तुम समाज और मानव

जाति के लिए अपने स्वस्थ नारीत्व के महत्व और प्रबल आवश्यकता को अनुभव करो। यह मत भूलो कि तुम्हारा स्वास्थ्य न केवल तुम्हारी चीज़ है वरन् समस्त समाज की चीज़ है। मत भूलो कि तुम्हारे स्वस्थ नारीत्व पर न केवल तुम्हारा सुख निर्भर है बल्कि अगली सन्ततियों अतः जाति का भाग्य निर्भर है। मत भूलो कि तुम्हारे यौवन, तुम्हारे रक्त-मांस, तुम्हारे स्त्रीत्व के कर्त्तव्य और दान से नूतन मानव की सृष्टि होगी। मत भूलो कि यह जो यौवन धीरे-धीरे, अनजाने, चोर-सा दबे पाँव तुम्हारे पास आ रहा है और तुम्हारे मन-प्राण उसके आगमन की सुगंध में बेचैन से हो रहे हैं, इसका एक तात्पर्य, एक मतलब, एक रहस्य है। यह इसलिए नहीं है कि तुम अपने ही अपने में खो जाओ; यह इसलिए नहीं है कि तुम अपनी मृदुगन्ध में भ्रमित-सी मार्ग भूलकर चलो। यह केवल उस तात्पर्य की पूर्ति के क्रम को सुगम करने के लिए है जिसको ध्यान में रखकर प्रकृति ने तुम्हें नारी के साँचे में ढाला है और पुरुष से भिन्न शरीर दिया है।

**स्वस्थ नारीत्व**

तुम्हें आरम्भ से अपने जीवन के 'मिशन' में—नियुक्त कार्य में—गौरव का अनुभव करने और उस गौरव की रक्षा करने की आदत डालनी होगी। तुम्हें धीरे-धीरे अपनी मर्यादा उँची करनी होगी, उसे गिरने न देना होगा। एक बात जिसे तुम सहज ही समझ सकती हो यह है कि स्त्री-पुरुष में जो शरीर-भेद है वह केवल एक ही कारण को लेकर

**उत्पादन प्रकृति का कानून है**

है। इसका एक मात्र अर्थ और तात्पर्य है कि जीवन की धारा कभी खण्डित न हो; जीवन की सृष्टि सदैव होती रहे। व्यापक दृष्टि से देखें तो यह भी कह सकते हैं कि नारी का अस्तित्व ही इसी कारण है। यह ठीक है कि सभी लड़कियाँ माता नहीं बनतीं पर सब में जनन-प्रवृत्ति होती है और यदि इस प्रवृत्ति को स्वस्थ और मर्यादापूर्ण तल पर नहीं रखा गया तो इसके कारण समस्त जीवन की भूमिका नष्ट हो जाने का खतरा उठाना पड़ेगा।

याद रखो, उत्पत्ति प्रकृति का पहला कानून है। मरण के बीच जीवन उगता है; विनाश के बीच उत्पादन की क्रिया होती है। हर जगह तुम यह बात देख सकती हो। उस लोनी लता पर कल तक जो कली मुस्कराती हुई पत्तियों के बीच झाँकती थी, आज खिल कर फूल हो गई है। आम के बौर गिर गये हैं और उनकी जगह छोटी-छोटी अमियाँ दिखाई देने लगी हैं। समस्त चेतन सृष्टि इसी प्रकार एक से अनेक होती रहती है। फलोत्पादकता ही सृष्टि का रहस्य है। इसी तरह जीवन की धारा बराबर बहती रहती है।

सृष्टि में जहाँ जीवन का विकास निम्न स्तर पर है तहाँ यह प्रवृत्ति अन्धतापूर्वक, यन्त्र की भाँति, काम कराती है। उसमें चुनाव तो है पर विवेक नहीं है। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसने युगों की साधना और अनुभव के बाद यह सीखा है कि अस्तित्व-रक्षा की अंध-प्रवृत्ति के स्थान पर मानव-जीवन की उच्च भूमिका की स्थापना के लिए विवेक का शासन और नियन्त्रण आवश्यक है।

एक और बात में भी मनुष्य अन्य योनियों से भिन्न है। जब सृष्टि और जीवन के अन्य स्तरों में जनन के बहुत थोड़े दिनों बाद तक नवीन और जन्म देने वाले जीवन का सम्बन्ध रहता है तहाँ मानव-समाज में दोनों का सम्बन्ध दीर्घकाल तक बना रहता है। बड़ा होकर बच्चा मातृत्व की स्मृति को भूल नहीं सकता। विवेक के कारण मानव न केवल अपनी जाति की धारा को क़ायम रखता है वरन् उसे क़ायम रख रहा है इसका अनुभव भी करता है और उसे क़ायम ही रखने के लिए नहीं वरन् उच्च स्तर पर ले जाने के लिए उसकी क्या ज़िम्मेदारियाँ हैं, इसे समझता है। इस प्रकार ध्रुव मृत्यु के बीच उसने जीवन को, इच्छा-पूर्वक, पल्लवित करने की शक्ति प्राप्त की है।

**मानव की भिन्नता**

इसीलिए यद्यपि वनस्पतियों और पशु-पक्षियों में भी इस उत्पत्ति के लिए प्राकृतिक आकर्षण है तथा नर-मादा के संयोग से वहाँ भी सृष्टि की धारा प्रवाहित है तथापि उनमें विवेक या बुद्धि का विकास न होने के कारण चुनाव या तो बड़ी प्रारम्भिक अवस्था में है या अप्रत्यक्ष और अन्ध है। केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो नवीन-जीवन की सृष्टि या रचना में अपनी बुद्धि का उपयोग करता है और अपनी इच्छा से अपने जीवन-कार्य में साथी का चुनाव करता है। इस विवेक का उद्देश्य यह है कि तुम्हारे द्वारा न केवल जीवन की सृष्टि हो वरन् श्रेष्ठ और ऐसे जीवन की सृष्टि हो जो तुम्हारा सन्देश और आगे ले जा सके; जो दुनिया के लिए अधिक उपयोगी, अधिक समर्थ हो।

इसके लिए तुम अनुभव करो कि स्त्री के अंग-विशेष (जननेन्द्रिय आदि) तुम्हें एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए प्राप्त हुई हैं।

**तुम्हारा विशिष्ट कार्य**

उन्हीं के कारण तुम्हारे हृदय में असीम स्नेह है; उन्हीं के कारण तुम्हारे मन में कोमल भावनाएँ हैं; उन्हीं के कारण तुम में शक्ति का प्रवाह है; उन्हीं के कारण तुममें लोच, सौन्दर्य और आकर्षण है। इतनी ममता इतनी स्निग्धता, इतनी भाव-राशि सब उन्हीं के कारण है। उन्हीं के कारण जीवन के विकास में तुम्हारी महत्त्वपूर्ण देन सम्भव है; उन्हीं के कारण तुम्हारा विशिष्ट व्यक्तित्व है। इसलिए क्षणिक आवेश में या किसी तुच्छ इच्छा या लालसा के अधीन होकर उनका दुरुपयोग करना वह ज़हर है जो तिल-तिल करके तुम्हें खायेगा; जिसका अनुताप कभी समाप्त न होगा। याद रखो, यह थाती जो तुम्हें ईश्वर ने दी है, अत्यन्त पवित्र है। जीवन की उपासना में देवता के प्रति यह सर्वोत्तम अर्घ्य का साधन है। प्रमाद में पड़कर इसे दूषित मत होने दो। याद रखो, ज़रा-सी, एक क्षण की, ग़लती तुम्हें तुम्हारे कुमारीत्व के पवित्र आसन से वासना की अँधेरी खाइँयों में पटक देगी, जहाँ से उबरना नहीं है, और उबर जाओ तो भी फिर वह स्थिति कभी तुम्हें प्राप्त न होगी। तुम्हारे पास ऐसा ख़ज़ाना है, जिसका जोड़ नहीं। जिसके कारण ही विश्व में सब कुछ है; जिसके कारण ही जगत् में जीवन सम्भव है, प्रगति सम्भव है, विकास सम्भव है। जगत के जीवन का रहस्य और नवीन जीवन की सृष्टि करने का शक्तिपूर्ण साधन तुम्हारे पास है।

इसलिए अपनी श्रेष्ठता में श्रद्धा रखो; ईश्वर में श्रद्धा रखो कि उसने तुम्हें एक महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा है। एक सीमा तक ईश्वर ने अपनी रचनाशक्ति तुम्हें देकर मानो तुम्हारे द्वारा अपने ईश्वरत्व का प्रदर्शन किया है। उस अंश तक ईश्वरत्व तुममें है। इस दिव्य कार्य के लिए विवेक को कभी न छोड़ो। श्रद्धा तुम्हें शक्ति देगी; विवेक तुम्हें मार्ग दिखायेगा। श्रद्धा तुम्हें प्रेरणा देगी; विवेक तुम्हें प्रकाश देगा। वह तुम्हें भ्रमपूर्ण भावनाओं के जंगल तथा भूलभुलैया से निकाल कर जीवन के राजमार्ग पर ले जायगा। मैं मानता हूँ कि जीवन पर सदैव विवेक का नियन्त्रण बड़ा कठिन कार्य है पर बेटियो और बहिनो, याद रखो कि तुम में असीम शक्तियाँ छिपी हुई हैं। दृढ़ निश्चय, अभ्यास और प्रभु में आस्था रख कर तुम सब कुछ कर सकती हो। तुमने जगत् में क्या नहीं किया है। साम्राज्य तुम्हारी ठोकरों में ध्वंस हो गये हैं; सभ्यताएँ तुम्हारे उत्सर्ग के खाद में पनपी हैं; मानवता ने तुम्हारे स्नेहपूर्ण अंचल की छाया में अपना मार्ग ढूँढ़ा है। तुम चाहो, और तुल जाओ तो क्या नहीं कर सकतीं?

**तुम्हारी रचनाशक्ति ईश्वरत्व का अंश है**

यह ठीक है कि तुम्हारे निर्माण में केवल तुम्हारा ही हाथ नहीं है। तुम्हारे माता-पिता ने जो संस्कार तुम्हें दिये हैं, जिस वातावरण में तुम पली हो, जो आदतें बचपन से तुम्हें लग गई हैं उन पर भी बहुत-कुछ निर्भर है; पर निरन्तर प्रयत्न करके तुम अनेक आदतों और कठिनाइयों

**भावी मानव की रक्षा के नाम पर**

पर विजय प्राप्त कर सकती हो। तुमको यह भी सोचना चाहिए कि अच्छे संस्कारों के न होने या बुरी आदतों के लग जाने से तुम्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, उनसे अपनी सन्तान को बचाने के लिए भी उन पर विजय पाना तुम्हारे लिए आवश्यक है। अन्यथा कुसंस्कारों की यह धारा अनन्तकाल तक चलती रहेगी और भावी सन्ततियों का जीवन नष्ट करती रहेगी।

**यह भूल तुम्हें खा जायगी !**

प्रायः लड़कियाँ दुलार में बिगड़ जाती हैं। बचपन में उनका जीवन उतना कठोर नहीं होता जितना लड़कों का होता है। भावी जीवन की कठिनाइयों का न उनको, न माता-पिताओं को कुछ ध्यान होता है, इसलिए दुलारी बेटियाँ एक अति-भावुक प्राणी के रूप में बढ़ती हैं। उनमें एक प्रकार का अहंकार भीतर-ही-भीतर जड़ जमा लेता है। शृंगारिकता की भावनाएँ उनमें बचपन से उद्दीप्त की जाती हैं। इसलिऐ जब वे बड़ी होती हैं, उनकी मनोवृत्तियाँ चंचल हो उठती हैं। वे जब युवकों के परिचय या संसर्ग में आती हैं तो या तो बिल्कुल संकुचित हो जाती हैं या फिर अव्यवस्थित, अस्त-व्यस्त और अमर्यादित हो उठती हैं। शिक्षित आधुनिकाएँ सम्पर्क में आने वाले लड़कों को पराजित करने, उन पर विजय पाने की अहंकारपूर्ण आकांक्षा से भर उठती हैं। और विजयोन्माद में यह भूल जाती हैं कि हानि उन्हीं की होती है। यह अवस्था ऐसी होती है कि आदमी अपने कल्याण और समाज के हित की बात बहुत दूर तक सोच नहीं पाता। इन्द्रियों

का प्रबल प्रलोभन पावों को डगमगा कर देता है और एक लड़खड़ाहट, फिर पतन, फिर उसी में आनन्द की झूठी कल्पना। चस्का लग जाता है और जैसे नशेबाज़ सब जानते-बूझते हुए भी बिना नशे के रह नहीं पाता तैसे ही विष में भी उन्हें अमृत की झूठी कल्पना करनी पड़ती है।

मुझसे अनेक माताओं ने कहा है कि क्या मैं अपनी सन्तान का बुरा चाहती हूँ? मैं यह नहीं कहता कि वे अपने बच्चों का बुरा चाहती हैं। मैं जानता हूँ, उनका हृदय प्रेम और वात्सल्य से पूर्ण होता है, पर चाहने से ही दुनिया में कुछ नहीं होता; प्रेम के साथ विवेक का होना ज़रूरी है। चाहना ही यथेष्ठ नहीं है; किस प्रकार हमारे बच्चे का भविष्य सुधरेगा, इसे जानना और तदनुकूल आचरण करना भी आवश्यक है। अनेक निःस्वार्थ माताएँ भी स्वार्थी सन्तानों की जननी होती हैं। यह समझना भ्रममात्र है कि प्रेम केवल दुलार और चिकनी-चुपड़ी बातों में है; उसमें कर्त्तव्य की कठोरता भी है।

इसलिए तुम्हें अपने को बहुत सँभालकर चलना है। सहनशीलता जीवन की सफलता की पहली शर्त्त है। अपने प्रति तुम जितना कठोर होगी उतना ही आगे चलकर सुखी और सफल होगी। स्वच्छ चादर पर एक भी धब्बा कितना बुरा लगता है। तुम ऐसी बनो कि कोई तुम्हारी ओर अँगुली न उठाये। तुम ऐसी बनो कि तुम्हारे जीवन में तुम्हारा आदर्श दिखाई दे। यथार्थ ही आदर्श की कसौटी है। बड़ी-बड़ी बातें करना

**यथार्थ ही आदर्श की कसौटी है**

कठिन नहीं है; कठिन है उनमें से एक को भी सदा निबाह ले जाना, सिद्धान्तों और आदर्शों के अनुसार अपना जीवन बना लेना। तुम्हें अपने अन्दर आत्म-सम्मान की भावना का विकास करना चाहिए। अपने सम्मान की रक्षा का सदा ध्यान रखो। झूठे सम्मान या गर्व की रक्षा का नहीं, बल्कि अपने श्रेष्ठ चरित्र और गौरव की रक्षा का। यही तुम्हारी रक्षा की बाड़ है और यही तुम्हारी शक्ति और सहन-शीलता का कोष है।

\+ \+

**एक गहरी भूल**

आधुनिक शिक्षा-संस्थाओं की वृद्धि के साथ यह बात लोग भूलते जा रहे हैं कि जब स्त्री-पुरुष के जीवन में, उनकी शरीर-रचना और मनोरचना में अन्तर है तब उनकी शिक्षा-दीक्षा में भी कुछ अन्तर होना चाहिए। इसे न समझने के कारण स्त्रियों से अनेक वाञ्छनीय गुणों का लोप होता जा रहा है। कुछ संकुचित विचारवाली, गर्वीली और अपने में ही केन्द्रित होती जा रही हैं; कुछ तीखी, चिड़चिड़ी, लापरवाह। दोनों स्वार्थ-भावना में लिपटी हुई बढ़ रही हैं। फलतः कुछ औरतें छुई-मुई सी हो गई हैं; और कुछ मर्दानी औरतें बनती जा रही हैं। पर दोनों के सामने एक ही उद्देश्य रह गया है। आराम के साथ रहने, ज़िन्दगी के मज़े उठाने की लालसा। इसके कारण नारी-जीवन का वास्तविक आदर्श धुँधला पड़ गया है; गुणों की अपेक्षा रूप की प्यास ज्यादा चटखी है और मातृत्व की स्वाभाविक आकांक्षा और गरिमा शिथिल पड़ गई है।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि शिक्षित स्त्रियों में, मातृत्व की ज़िम्मेदारियों से भागने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। मातृत्व के कारण उनको अपना रूप ढलता हुआ दिखाई देता है, और बिना रूप के जीवन का व्यवसाय कैसे चल सकता है? इस चुहलबाज़ी, छेड़छाड़, शैतानी, चंचलता और दिल्लगी में जो मज़े हैं वे मातृत्व की ज़िम्मेदारियों और कठिनाइयों से भरी, बलिदान और त्याग की, ज़िन्दगी में कहाँ मिल सकते हैं? यह निश्चिन्तता, यह भोग, सपना हो जाता है। रूप की मोहिनी आज स्त्री-पुरुष दोनों की उपास्य देवी हो रही है और जो चीज़ें स्त्री के रूप, शृंगार और शारीरिक आकर्षण को कम करने वाली हों उनका बहिष्कार किया जा रहा है।*

---

* "Lovely woman is the watchword of these classes from cradle to grave, and whatever tends to impair her charm simply as a woman, is ruthlessly excluded form her life. Even maternity, which should be the crown of her womanhood, is considered among these degenerates as detrimental to her charm. I use the word degenerates purposely, for that country is on the down grade, whatever its apparent prosperity in which men want their women to be mistresses but not mothers, and in which girls are willing to lend their womanhood to this unnatural demand."

—Mona Baird in 'Womanhood' Pages 39—40.

जीवन प्रभु की दी हुई एक थाती है और नवीन जीवन का निर्माण एक गंभीर पर महान् उत्तरदायित्व है, इसे आज की लड़कियाँ और हमारी शिक्षा-विधि के विधाता भूल गये हैं। लड़कियों को सामान्य ज्ञान का शिक्षण तो बहुत मिल जाता है; पर ऐसी शिक्षा बहुत कम मिलती है जो उन्हें उनके एकमात्र जीवन-कर्त्तव्य के लिए समर्थ और योग्य बनावे। यह याद रखना चाहिए कि यदि नारी-जाति के रूप में आधी दुनिया ग़लत धारणाओं का शिकार हो जायगी तो सम्पूर्ण मानव-जाति को उसका कुफल चखना पड़ेगा। अज्ञान का परिणाम विनाश है। जो शिक्षा नारी को उसके वास्तविक आदर्श और कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करती है, वही असली शिक्षा है। जब तक पुरुष को स्त्री में सदैव मोम की एक पुतली, एक खिलौना खोजने की शिक्षा मिल रही है, जब तक युवक किसी बहिन के पास से गुज़रते हुए उसके अंगों पर तृष्णा और लालसा की दृष्टि डालते हैं, जबतक पुरुष को नारी में केवल रमणीयता का दर्शन करने की शिक्षा मिल रही है अतः तदनुकूल आचरण की आदत बढ़ रही है; और जब तक हम सब यह अनुभव नहीं करते कि नारी पुरुष की माता है, केवल विनोद और विलास की सामग्री नहीं, तब तक कोई समाज सभ्यता और संस्कृति के यात्रा-पथ में आगे नहीं बढ़ सकता। जो शिक्षण नारी में अपने प्रति और पुरुष में नारी के प्रति आदर और सम्मान की भावना उत्पन्न करता है, जो निजी सुख, स्वार्थ, भोग की अपेक्षा जीवन के आदर्शों, ज़िम्मे-

**जीवन प्रभु की दी हुई थाती है।**

दारियों और कर्तव्यों पर जोर देता है, वही सच्चा शिक्षण है। सच्ची शिक्षा भावनाओं की बाढ़ में भी दृढ़ रहने का पाठ पढ़ाती है। वह मानव स्वभाव को ठीक-ठीक समझ कर दूसरों के प्रति उदार होना सिखाती है।

**नारी और पुरुष दोनों आत्म-विस्मृत हैं**

ग़लती से न नारी को आज अपनी ठीक जानकारी है, न पुरुष को उसके विषय में उचित ज्ञान है। पुरुष या तो नारी को देवी समझ लेगा या फिर दासी बनाकर रखेगा। वह मानवी है, इसे पुरुष भूल गया है; कदाचित् नारी भी भूल गई है। इसीलिए या तो हम उसकी सहनशक्ति का बहुत ज्यादा अन्दाज़ कर लेते हैं, या फिर उसकी शक्तियों के प्रति बिल्कुल ही अविश्वस्त हो उठते हैं। असल बात यह है कि जीवन में नारी के सच्चे कार्य को नारी और पुरुष दोनों आज भूलते जा रहे हैं। मैं यह नहीं कहता कि तुम अपने भाई की भाँति ज्ञानार्जन न करो, न मैं यही कहता हूँ कि खेलों और कसरतों का बहिष्कार करो। मैं कहता यह हूँ कि तुम्हारी शिक्षा का मुख्य अंग यह नहीं है। तुम्हारा कार्य नारी-रूप में अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है—नारी-जीवन के भवितव्य को दृष्टि-पथ में रखते हुए। इस बात का ध्यान न रखोगी तो तुम और जो बनो, नारी न बन पाओगी।

याद रखो, यह उम्र तुम्हारे भावी जीवन की नींव है। तुम्हें बनना है तो अभी है, बिगड़ना है तो अभी है। अपने प्रयत्न और सावधानी

से तुम अपने को और दुनिया को आगे ले जा सकती हो; अपनी लापरवाही और आलस्य से तुम अनुताप की वह आग पैदा कर सकती हो जो न केवल तुम्हें जलाकर नष्ट कर देगी बल्कि समाज के सामने कठिन समस्याएं खड़ी कर देगी। मैं कह चुका हूँ और दोहराता हूँ, कि वातावरण दूषित है, जीवन की मर्यादा गिर गई है; प्रलोभन गुण्डे-सा निर्द्वंद्व हमारे चारों ओर घूम रहा है। दुर्बल वासनाएं अनेक आकर्षक रूपों में हमारे सामने उपस्थित हैं। माता-पिता बचपन से लड़कियों को शंका और अविश्वास के वातावरण में पालते हैं; उनपर कड़ी दृष्टि रखी जाती है जो मानो उनको अन्दर-ही-अन्दर गुदगुदाती है कि तुम केवल भोग की सामग्री हो—तुम शंका के ही योग्य हो; तुम पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उचित सावधानी और पथ-प्रदर्शन के स्थान पर शंका और सन्देह का यह विष धीरे-धीरे लड़कियों को शिथिल, आत्म-विश्वासशून्य और अपनी रमणीयता के बारे में ग़लत रूप से सोचने को विवश कर देता है। वे अपने 'सेक्स' में बहुत अधिक केन्द्रित हो जाती हैं; उनका अस्वस्थ रूप ही उनके सामने आता है। अपने विवेक पर उनका नियन्त्रण शिथिल हो जाता है। और इसीलिए वे प्राय; अस्वस्थ मानस की दुर्बलताओं का शिकार हो जाती हैं—इधर-उधर से छिपकर गुप्त बातें सुनती-जानती हैं। एक प्रकार का अवाञ्छनीय कुतूहल उनमें जाग्रत होता है और उसकी तृप्ति न होने के कारण उनमें प्रायः एक प्रकार का 'हिस्टीरिया' पैदा हो जाता है।

**बनने-बिगड़ने की यही उम्र है**

अपने भावी जीवन के तथ्यों, रहस्यों, की शिक्षा उन्हें विकृत रूप में मिलती है। नगरों में सिनेमा उनकी जीवन-दृष्टि को विकृत कर देते हैं। जीवन की अत्यन्त निर्माणकारी अवस्था में वे चित्रपटों पर वासना का नंगा नाच देखती हैं।

**अधःपात के बीज**

पुरुष है कि अपनी पत्नी को छोड़ परायी रूपवती नारी के पीछे पागल है। छिप-छिपकर मिलते हैं। लड़कियों को सच्चे पुरुष और पौरुष का ज्ञान ही नहीं होने पाता। ये चित्रपट उनको यही शिक्षा देते हैं कि पुरुष स्त्री में केवल रूप की खोज करता है। वफ़ादारी, सेवा, प्रेम, पारस्परिक सहानुभूति इत्यादि उसके लिए व्यर्थ हैं। कैसा मज़ाक है। पुरुष का कैसा विकृत चित्र यहाँ है। इसे देखने के बाद क्यों कर लड़कियों में, या लड़कों में ही, श्रेष्ठ मानवी गुणों के प्रति आस्था हो सकती है? जीवन के युद्ध में इनसे उन्हें क्या सहायता मिल सकती है? इनके कारण उनमें गलत दृष्टिकोण पैदा होता है; विकृत और दूषित विचारों एवं भावनाओं का जन्म होता है।

बाहर यह स्थिति होती है और अन्दर हो रहे परिवर्तनों के प्रति उसका मन रहस्य और कुतूहल से भरा होता है। विकास के क्रम में कभी उस पर स्वाद लेने वाली इन्द्रिय का अधिकार था। उसके बाद घ्राण ( सूँघने की ), दर्शन और श्रवण शक्तियों तथा इन्द्रियों का समय आया। फूल, सुगन्धित तैल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों की इच्छा, सुदर्शन वस्तुओं को देखने और पाने की रुचि—कपड़े के रंगों की ओर ध्यान तथा संगीत के

**इन्द्रियों का विकास**

प्रति अनुराग, मन में कुछ गुनगुनाना, मधुर कण्ठ से निकली रागिनी तथा भावात्मक गीतों के प्रति आकर्षण का जन्म हुआ। इन सब वृत्तियों ने उसे प्रभावित किया और शारीरिक एवं मानसिक निर्माण पर अपनी छाप छोड़ गईं। सूक्ष्म शृंगार-भावना उसमें पैदा हुई। वह अपने कपड़ों के प्रति अधिक सजग रहने लगी; बालों को साफ़ रखने और गूँथने में उसकी सुरुचि व्यक्त हुई। दर्पण में अपने को देखने की आदत पैदा हुई।

**स्पर्श-भावना**

इन सब के बाद अब उसमें स्पर्श-भावना का विकास हुआ है। वह अब अपने बड़े भाइयों के छूने में भी संकोच करती है। किसी पुरुष के स्पर्श से उसमें एक सिहरन उत्पन्न होती है, जैसे बिजली के 'लीक' करने वाले तार का स्पर्श हो गया हो। अब उसमें एक प्रकार का भावावेश, भावातिरेक है स्पर्श से चेतना के केन्द्रों में ध्वनि और गूँज होने का यह आरम्भ उसके जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह ध्वनि, यह गूँज, पुरुषों के निकट एक प्रकार का मनोद्वेग—सब मानो कह रहे हैं कि उसके जीवन के प्रमुख कार्य एवं कर्तव्य का श्रीगणेश हो गया है। यह जीवन में कामना के नूपुर की मधुर ध्वनि है; यह जीवन-क्षेत्र में काम के रथ का प्रवेश है।

मैं कह चुका हूँ कि बाहर की दुनियाँ कठिनाइयों और प्रलोभनों से भरी है। तभी मानों तुम्हारी शक्ति की परीक्षा करने तुम्हारे हृदय को फ़ुसलाता यह नवीन भाव--काम—आया है। अब तुम्हारे

मनोबल की परख होगी। अब तुम भावनाओं की आँधियों से घिर गई हो; अस्पष्ट, अंकुरित, कामनाओं का दूरागत वंशी-रव तुम्हारे कानों में ही नहीं, हृदय में भी, गूँजता है। याद रखो, तुम में अन्दर ही अन्दर नवीन शक्तियों का स्फुरण हो रहा है। प्रकृति तुमको अपने कार्य के लिए गढ़ रही है।

जीवन में यह बड़ा ही महत्वपूर्ण समय है। जो कुछ तुम में है, जो कुछ तुम में नया आ रहा है सबका प्रयोजन है। पर यही खतरे का समय भी है। प्रायः लड़कियाँ भावनाओं के इस झंझावात में अस्थिर हो उठती हैं। नवीन अनुभवों को वे सँभाल नहीं पातीं; उनको प्राकृतिक रूप से धीरे-धीरे विकसित एवं पुष्ट होने का मौका ही नहीं देतीं। कामना के नूपुर उन्हें आमंत्रण देते हैं और शान्त, संयमित, स्थिरचित्त सम्राज्ञी की भाँति यौवन के दूत का अपने सिंहासन के निकट स्वागत करने की जगह वे, अपनी मर्यादा भूल कर, आगे दौड़ पड़ती हैं।

यदि संयम से काम लिया जाय तो यह नवीन काम-प्रवृत्ति, स्पर्श भावना की यह अनुभूति, तुम्हारे लिए अमृत-घट हो जायगी; यदि

**अमृतघट लोगी या विष ?**

असंयम और जल्दबाज़ी से काम लोगी तो मधुर विष की भाँति यह तुम में तृप्ति और शान्ति के स्थान पर प्यास, छटपटाहट, तड़प, जलन की सृष्टि करेगी। याद रखो, जो पौधा जल्द फल देने लगता है, वह न केवल जल्द मुरझा जाता है बल्कि उसके फल भी अविकसित और भद्दे होते हैं। यदि तुम मज़ा लेने के लोभ से जल्दबाज़ी करोगी और अपनी

विकासमान प्रवृत्तियों, इन्द्रियों तथा शक्तियों से खिलवाड़ करोगी तो सुख के सपने, सपनों की भाँति ही, जल्द नष्ट हो जायँगे। प्रायः लड़कियाँ इसे नहीं सुनतीं और अपना भविष्य बिगाड़ लेती हैं। जो यौवन जल्द आता है, वह जल्द ही चला जाता है; जिस प्रेम की अनुभूति शीघ्र होती है, वह जीवन के दो-चार धक्कों में समाप्त हो जाता है। वासनाएँ इस प्रेम को निगल जाती हैं।

**कली फूल हो रही है !**

बेटियो और बहनो, अपने को सँभालो। शक्ति का अक्षय कोष तुम में उमड़ रहा है; आन्तरिक भावनाएँ और शक्तियाँ अपने को तुम्हारे द्वारा अभिव्यक्त करने को उतावली हैं; यौवन तुम्हारे अंगों में लुका-छिपी खेलने लगा है; प्रेम के देवता के आगमन का समय निकट है। अपनी दुर्बलताओं से ऊपर उठो; दृढ़ निश्चय से अपने मन को झकझोरने वाली अवाञ्छनीय लालसाओं को कुचल दो। मत कहो कि यह तुम से कैसे होगा। कर तुम सब कुछ सकती हो; केवल आत्म-नियंत्रण का दृढ़ निश्चय करने की देर है। याद रखो, स्वच्छ मन्दिर में ही देवता आयेंगे। अपने जीवन का मन्दिर स्वच्छ रखो; उसमें कहीं मलिनता और अस्वच्छता न हो; अपनी संयमित भावनाओं से मन्दिर को प्रकाशित कर दो; अपने हृदय में आरती जलने दो; अपने मन-प्राण को सुगन्ध से भरने दो। अमृतकणों से यौवन को अभिषिक्त होने दो। आज कली फूल हो रही है, और जीवन में वसन्तागम का सन्देश मुखरित एवं ध्वनित है !

# कुसुमित यौवन

नई-नई कोमल पत्तियाँ, जिनमें नवीन रस की लालिमा फटी पड़ती है, चिकनी, सुदर्शन, मधुर-मधुर भीनी गन्ध कलेजे में छिपाये; कलियों ने घूँघट दूर कर दिया है, और सुंदर रंगीन परिधान पहने मुस्कराती हैं। भौंरे आते हैं और फूलों के सामने नृत्य करते हैं; दो बातें होती हैं और फिर जीवन का सन्देश लिये ये ( भौंरे ) दिगन्त में उड़ जाते हैं। जो कोयल अभी तक चुप थी, वह हृदय की सम्पूर्ण संवेदना के साथ, कूक उठी है—समस्त प्रकृति मानो गदरा उठी है—एक आशा, एक रहस्य का आवरण उस पर छा रहा है। समस्त वातावरण में एक हलका-सा नशा है। हलकी सुगन्ध से सब कुछ विह्वल-सा है।

प्रकृति में जैसे यह वसन्तागम है तैसे ही जीवन में यौवन का प्रवेश

है। यह आता है तो सब निश्चय डगमगा जाते हैं। इसके प्रत्येक पद-क्षेप में बिजलियों का नर्तन है; इसके प्रत्येक श्वास में प्राणशक्ति का संचार है; इसकी दृष्टि में सम्मोहन है; इसके दर्शन में आत्माराधन का उल्लास है। जीवन की सब उपजाऊ शक्तियाँ इसकी मुट्ठी में हैं। शक्तियों का पुंज लिये, जीवन पर आकर्षण और सम्मोहन का जादू-भरा आवरण फैलाते हुए, मन-प्राण को विमुध और विह्वल करता यह यौवन आज तुम्हारे द्वार पर आया है।

**यौवन का आगमन**

उसे देखो। उसके एक हाथ में अमृत-घट है और दूसरे में विष-पात्र। दोनों, देखने में, एक-से हैं। आज तुम जो माँगोगी, वह तुम्हें वही देगा। बोलो, तुम क्या लोगी?

कुछ-कुछ जान में, पर अधिकांश अनजाने ही, तुम बदल गई हो। वह घरौंदों का खेल, वह गुड़ियों का मनोरंजन, वह शोखी, वह चंचलता, वह बात-बात में रूठना और फिर क्षण-भर में सब कुछ भूल जाना, वह कुट्टी और मेल की अगणित आवृत्तियाँ, वह निर्द्वन्द्वता और स्वच्छन्दता, जो मन में आये कह डालना और जिस बात पर चाहे अड़ जाना, वह धौल-धप्पा, शैतानियाँ और छेड़छाड़, जरा-ज़रा सी बातों पर हट और अकड़ आज कहानी हैं। अब तुम में एक प्रकार की गोपनीयता आ गई है। अब तुम में निजत्व का एक अंकुर उग आया है। तुमने, अनजान में ही, अपनी एक अलग दुनिया बना ली है। अब व्याह-बरात

**तुम अब वह नहीं रही**

की चर्चाओं में तुम खुले-खुले शरीक नहीं होती; माँ और बूढ़ियोंके सामने से हट जाती हो पर कहीं ओट में छिपे हुए, तुम्हारे कान सब कुछ सुन लेना चाहते हैं। या कभी-कभी सखी-सहेलियों में चुटकी, व्यंग विनोद के बीच दिल की बातों की झाँकी मिल जाती है। एकान्त में अपने को देखने की चाह भी होती है। दर्पण में अपना मुँह देखकर तुमको स्वयं एक उल्लास-भरा आश्चर्य होता है। मुँह की लाइनें गोलाकार हो रही हैं; गाल उभर आते हैं; आँखों में विशेष ज्योति है; छाती की हड्डियाँ चौड़ी हो गई हैं और उन पर माँस भर आया है। रोमावलियाँ व्यक्त हो रही हैं। नाभि के नीचे के समस्त अंगों में एक उभार है। जैसे चित्रकार आकृतियों में रंग भरकर उसे सजीव कर देता है वैसे ही यौवन के स्पर्श से तुम में एक नया आकर्षण आ गया है। तुम्हारा शरीर पहले से अधिक स्निग्ध, सरस और सुदर्शन हो गया है। आँखों में एक गुलाबी रंग है। अब तुममें वह चीज आ रही है जो जीवन के प्राकृतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए पुरुष को नारी की ओर आकर्षित करती है—दोनों को निकट लाती है।

यह यौवन और सौन्दर्य कौन नहीं चाहता? समस्त प्राणी सौन्दर्य की ओर आकर्षित होते हैं। यदि फूलों में रूप और रंग न हो तो तितलियाँ उनके पास क्यों आवें और उनके द्वारा प्राकृतिक उद्देश्य की पूर्ति कैसे हो? यह सौन्दर्य सृष्टि के क्रम को मनोरम बनाने के लिए है। यह इसलिए है कि मनुष्य में ममता और सहानुभूति, गौरव और शालीनता के भाव जाग्रत हों और वह जीवन की धारा को अक्षुण्ण

रखने के कार्य में न केवल शरीर से वरन् अपनी सम्पूर्ण विकसित चेतना के साथ—समस्त मन-प्राण से एक दूसरे में केन्द्रित होकर अपना कार्य करे।

ऊपर-ऊपर तुम्हारे शरीर में जो आकर्षण और कमनीयता आ जाती है, उससे तुम अश्चर्याभिभूत हो। पर तुम्हारे शरीर के भीतर जो परिवर्तन हो रहे हैं उन्हीं के कारण यह सब है। बात यह है कि शरीर के अन्दर कई ग्रन्थियाँ होती है जिन्हें अंग्रेजी में 'ग्लैण्ड्स' कहा जाता है।

**आन्तरिक परिवर्तन**

शरीर के निर्माण, स्वास्थ्य और विकास में इन ग्रन्थियों का बड़ा भाग है। पश्चिम के अच्छे सर्जन तो आपरेशन में पुराने ग्लैण्ड के स्थान पर नये ग्लैण्ड जोड़कर बुढ़ापे में जवानी की क़लम भी लगाने लगे हैं। ग्रन्थियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं, एक वे जो नालियों-द्वारा अपना स्राव या रस शरीर के भीतर वा बाहर पहुँचाती हैं। जैसे मुँह में सैलीवरी ग्लैण्ड्स या 'लाला ग्रन्थियाँ' हैं जिनसे लार निकलती है, और मुख गीला रहता है। यदि ये स्रवित न हों, लार न निकाले तो जीना मुश्किल हो जाय। इसी प्रकार आमाशय की ग्रन्थियाँ हैं जिनसे रस (गैस्ट्रिक जूस) निकलता है। यकृत (लीवर), अग्न्याशय (पैन्क्रियास) और अण्ड (टैस्टिकल्स) भी इसी प्रकार की स्रावक ग्रन्थियाँ हैं जिनसे रस निकला करता है। इन्हीं के कारण भोजन पचता है, शरीर में चिकनाई आती है, जनन और उत्पादन सम्भव होता है, शरीर विकसित होता है, तथा अन्दर के विष और मल बाहर निकलते रहते हैं।

ऊपर जिन ग्रन्थियों के नाम दिये गये हैं वे सब नलिका या प्रणाली-युक्त हैं अर्थात् उनके स्राव को अन्दर या बाहर पहुँचाने के लिए नालियाँ बनी हुई हैं परन्तु शरीर-विज्ञान की आधुनिक खोजों में ऐसी भी ग्रन्थियों का पता चला जिन में प्रणालियाँ या नालियाँ नहीं होतीं। जैसे गले में 'थाईराइड' और कोष्ठ में 'एड्रिनल'। इन ग्रन्थियों के स्राव अन्दर ही अन्दर खपते रहते हैं अतः उसे अन्तःस्राव ('इन्टरनल सिक्रीशन') कहते हैं। क्रिया की दृष्टि से ये ग्रन्थियाँ तीन भागों में बाँटी जा सकती हैं। १. अन्तःस्राव की रचना करने वाली (जैसे थाईराइड और एड्रिनल), २. बहिःस्राव (बाहर निकालने वाले द्रव) का निर्माण करने वाली (जैसे लाला और आमाशय ग्रन्थियाँ), ३. भीतरी तथा बाहरी दोनों प्रकार के स्रावों का निर्माण करने वाली (जैसे यकृत, अण्डकोश, बीजकोश आदि)।

शरीर का निर्माण और विकास इन्हीं ग्रन्थियों पर निर्भर है। तुम्हारे अन्दर जो लोच, जो चिकनाई, जो ज़ोम और मस्ती है; आँखों में जो आकर्षण है, छाती पर जो उभार है वह सब इन्हीं के कारण है। तुम स्वयं अनुभव कर रही होगी कि शरीर के कुछ विशेष अंगों में अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से परिवर्त्तन हो रहे हैं। कमर के नीचे के अंगों की बनावट पहले से बहुत भर गई है। नितम्ब उभर आये हैं। ऊपर छाती की हड्डियाँ अधिक फैल रही हैं और उन पर मांस और चिकनाहट आ रही है।

इनके अतिरिक्त गर्भाशय के आस-पास भी, अन्दर-अन्दर परि-

वर्तन हो रहे हैं। इनमें से कुछ से तुम परिचित भी होगी—चाहे उनका कारण तुम्हें अच्छी तरह न मालूम हो।

**खून का वह धब्बा**

१४-१५ वर्ष की अवस्था में * जब पहली बार तुम्हें आलस्य का अनुभव हुआ होगा, जननेन्द्रिय के द्वार पर खून दिखाई दिया होगा या अनजाने ही स्रवित होकर कपड़ों में लग गया होगा, तब तुम घबड़ाई होगी। अधिकांश लड़कियाँ घबड़ा जाती हैं। उनको पता नहीं रहता कि यह क्या हो गया? वे समझती हैं, कोई रोग हो गया है। बहुतेरी छिपाती हैं और अपना स्वास्थ्य बिगाड़ती जाती हैं। परन्तु बेटियो, इसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं है। तुम्हारी माँ या बूढ़ी दादी तुम्हें बतायेंगी कि वह स्त्रियों के लिये आवश्यक है और इसके ऊपर ही स्त्री का स्वास्थ्य निर्भर है। पर संभव है, तुम लज्जा-वश उनसे चर्चा न कर सको, इसलिए बहुत संक्षेप में, मैं यहाँ, जानकारी की कुछ बातें लिखता हूँ।

पेड़ू के ठीक नीचे, जनन-क्रिया-सम्बन्धी अवयव या अंग हैं। योनि-द्वार के सामने, अन्दर की ओर, गर्भाशय है, जिसमें गर्भधारणा होती है और शिशु बढ़ता है।

**गर्भाशय के यंत्र**

इसके दाहिने-बायें, ज़रा नीचे की ओर, दोनों तरफ एक-एक बीज-कोश या अण्डाशय है। गर्भाशय छोटे लम्बे मुँह वाले अमरूद की

---

*अधिक स्वस्थ या अकाल-पक्व लड़कियों में १२-१३ वर्ष में, इसी प्रकार बहुतों में १६-१७ में भी मासिक धर्म आरम्भ होता है।—लेखक।

शकल का होता है और अण्डाशय की शक्ल चिपटे बादाम की तरह होती है। गर्भाशय से दाहिनी-बाईं ओर दो नालियां निकली हैं जो कुछ दूर तक दाहिने-बायें सीधे जाने के बाद, किंचित् गोलाई लेकर नीचे की ओर मुड़ जाती हैं और अण्डाशयों से मिल जाती हैं। इन्हें रक्तवाहिनी कहते हैं। १४-१५ साल की होने पर इन अण्डाशयों में अण्डों का जन्म होने लगता है। सैकड़ों छोटे-छोटे अण्डे बन जाते हैं। ये अण्डे क्रमशः विकसित होकर पकते रहते हैं। हर अट्ठाईसवें दिन ( किसी-किसी में अधिक दिनों में भी ) एक या दो अण्डे पूरी तरह पक जाते हैं। इधर ये पकते हैं, उधर गर्भाशय के भीतरी भाग में कुछ सूजन आ जाती है और खून इकट्ठा हो जाता है। इस खून में गर्भाशय के आस-पास का मल तथा विषैला पदार्थ मिला होता है। उधर अण्डा अण्डाशय से अलग होता है, इधर यह जमा हुआ खून बाहर बहने लगता है और तीन दिन तक बहता रहता है--किसी-किसी को अधिक दिनों तक भी बहता है। यही मासिक धर्म है। यह स्राव इस बात का संकेत है कि प्रकृति तुम्हारी जननेन्द्रियों को उस महत्त्व और उत्तरदायित्व के काम के लिए तैयार कर रही है जिसके लिए उसने तुम्हें नारी बनाया। इसके कारण दो बातें होती हैं--एक तो गर्भाशय का समस्त मल धुल जाता है—वह स्वच्छ हो जाता है; दूसरी वह उन बीजाणुओं के लिए ,उपजाऊ भूमि बन जाता है जिनके कारण गर्भाधान या गर्भ में भ्रूण की स्थिति सम्भव होती है।

उधर इस मासिक धर्म या रक्त-स्राव के द्वारा गर्भाशय स्वच्छ और

निर्मल होता जाता है, इधर पका हुआ अण्डा अण्डाशय से निकल कर रजवाहिनी नामक नली—द्वारा धीरे-धीरे गर्भाशय की दिशा में बढ़ता रहता है। यात्रा धीरे-धीरे होती है—यहाँ तक कि गर्भाशय तक पहुँचने में उसे तीन से पाँच दिन तक लग जाते हैं। मतलब जब वहाँ पहुँचता है तब तक गर्भाशय का समस्त सञ्चित, दूषित रक्त निकल गया होता है और वह धुलकर स्वच्छ हो चुका रहता है। गर्भाशय में पहुँच कर यह अण्डा कुछ दिन तक वहीं रहता है। कोई कोई इसकी अवधि बारह दिन तक मानते हैं। इसके बाद यह योनिमार्ग से निकल जाता है। पर इसके गर्भाशय में रहते यदि पुरुष के वीर्य में पाये जाने वाले कीड़े से इसका संयोग हो जाता है तो दोनों के मिलने से एक नवीन जीवकोश का निर्माण तेज़ी से होने लगता है। ये जीव अपने को गुणन करके बढ़ने की शक्ति रखते हैं। जब दोनों के समागम से नया जीवकोश बनता है, तब कहा जाता है कि गर्भ रह गया। तब गर्भाशय का मुँह सिकुड़ कर बन्द हो जाता है, और सामान्यतः मासिकधर्म बन्द हो जाता है, क्योंकि शरीर की सम्पूर्ण पोषक शक्ति नवीन जीवन की वृद्धि में लग जाती है। कुछ दिनों तक शरीर भारी रहता है, सुबह मिचली आती है। किन्तु धीरे-धीरे शरीर-प्रणाली अपने को नवीन स्थिति के अनुकूल बना लेती है।

**नवीन जीवन का निर्माण**

इतना बताने से तुम समझ गई होगी कि सृष्टि-संचालन के कार्य में तुम्हारा क्या कार्य और महत्व है। तुम्हारा मुख्य कार्य जाति की

धारा को अविच्छिन्न रखता है। इसीलिए तुम नारी हो और प्रकृति ने तुम्हें इस कार्य के अनुकूल अवयव और शक्ति दी है। तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारा आकर्षण, तुम्हारी मोहिनी, तुम्हारे शरीर में होने वाले ये विभिन्न परिवर्तन, जिनकी चर्चा ऊपर मैं कर आया हूँ, सब तुम्हारे इस कार्य और उत्तरदायित्व को सुगम बनाने के लिए हैं।

जब तुम अपने उत्तरदायित्व को समझ चुकी हो, तब मैं एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता हूँ। यदि तुम वनस्पतियों के जन्म-मरण की ओर ध्यान दोगी तो तुम्हें मालूम होगा कि प्रायः नवीन पत्तियाँ आती हैं तब पुरानी झड़ जाती है। पुराना, जीर्ण जीवन नवीन को जन्म देते-देते नष्ट हो जाता है। अनेक कीड़े प्रजनन के कार्य में नष्ट हो जाते हैं। अवश्य ही जीवन-विकास के ऊँचे स्तरों में यह बात नहीं पाई जाती, फिर भी इतना तो है ही कि नवीन जीवन की उत्पत्ति और वृद्धि में शक्तियों का पर्याप्त क्षय हो जाता है। मनुष्य में यह क्षय पशुओं से भी अधिक है। तुम देखती हो कि गाय का बच्चा पैदा होते ही उछलने-कूदने लगता है, केवल दूध पीने के मामले में माँ पर निर्भर करता है, और बहुत जल्द उससे भी स्वतन्त्र हो जाता है। गाय पर भी थोड़े ही दिनों तक इस प्रजनन का प्रभाव रहता है। बहुत जल्द वह स्वस्थ हो जाती है। मनुष्य की स्थिति इतनी सरल नहीं है। पहले तो प्रजनन में ही स्त्री को काफी कष्ट भोगना पड़ता है, फिर मनुष्य का बच्चा पशुओं के बच्चों के समान विकसित नहीं

**मानव योनि में जीवन-विकास का कठिन क्रम**

होता। वह बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है, और एक अर्से तक अपनी माँ पर निर्भर करता है। प्रजनन में माँ के शरीर का जो क्षय होता है, निरन्तर बच्चे के पालन-पोषण और संवर्द्धन में लगी रहने के कारण उसकी पूर्ति मुश्किल से, और बहुत धीरे-धीरे, हो जाती है। इसका कारण यह है कि मनुष्य के बच्चे का विकास पशुओं के बच्चों की भाँति, शारीरिक अथवा भौतिक आवश्यकताओं तक सीमित नहीं है; उसमें बुद्धि, विवेक की शक्तियाँ भी निहित होती हैं। न केवल अपने प्रति, वरन् दूसरे के प्रति भी, धीरे-धीरे उसमें कर्तव्य के भाव जाग्रत होते हैं। ज्यों-ज्यों वह बढ़ता है, उसमें उच्चाकांक्षाएँ और महत्वाकांक्षाएँ आती हैं। इसलिए मानव-शिशु के पोषण और विकास का कार्य कहीं कठिन है, और दीर्घ काल तक सावधानी और शक्ति की अपेक्षा रखता है। इस लिए प्रजनन के लिए, पशुओं की भाँति, केवल शारीरिक तैयारी ही आवश्यक नहीं है बल्कि तदनुकूल मानसिक विकास और तैयारी की भी आवश्यकता है। फिर किशोरावस्था के इन परिवर्तनों तथा मासिक धर्म के आरम्भ से यह प्रकट नहीं होता कि शरीर से भी तुम अपनी जिम्मेदारी निभाने में समर्थ हो। यह तो प्रकृति की ओर से केवल संकेत है कि अगामी जीवन के लिए तुम्हारे शरीर में आवश्यक परिवर्तन आरम्भ हो गये हैं, तुम्हारा शरीर अपने कार्य के लिए अपने को तैयार करने लगा है।

विज्ञान की दृष्टि से अपना पोषण और वृद्धि का कार्य प्रजोत्पत्ति या सन्तानोत्पत्ति के कार्य के बिल्कुल प्रतिकूल है। पहले में वृद्धि और

दूसरे में क्षय है। शरीर-विज्ञान की दृष्टि से देखें तो शरीर में दो प्रकार की क्रियाएँ सदैव होती रहती हैं; एक वृद्धि की, दूसरी ह्रास या क्षय की। इस वृद्धि और क्षय को क्रमशः 'अनाबोलिक' ( Anabolic ) और 'केटाबोलिक' ( Katabolic ) क्रियाएँ कहा जाता है। जब तक आमदनी और खर्च के हिसाब के बाद भी आमदनी ज़्यादा ठहरती है, वृद्धि हो रही है, जब-तक शरीर बराबर बढ़ता रहता है,—'एनाबोलिक' शक्तियाँ प्रबल रहती हैं किन्तु यह वृद्धि एक सीमा तक जाकर रुक जाती है। एक अवस्था में शरीर अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, और फिर, दोपहर के सूर्य की भाँति क्रमशः ढलने लगता है—ह्रास की ओर होता है। जब शरीर का विकास पूर्णावस्था में हो, तभी सन्तानोत्पत्ति की ओर ध्यान देना चाहिए। पहले व्यक्तिगत वृद्धि, बाद में जाति की धारा बनाये रखने का प्रयत्न, यही प्राकृतिक क्रम है।

**वृद्धि और क्षय**

जब यह बात है, तब किशोरावस्था आने के साथ ही तुम्हारी ज़िम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। कामनाओं के प्रथम परिचय में तुम्हें अपने को बहुत सँभाल कर रखना है। पागल नहीं हो जाना है। कम से कम ४-५ वर्ष तक ( लगभग २० वर्ष की अवस्था तक ) अपने मन पर जितना ही काबू रखोगी, अपने शरीर तथा मानसिक विकास का जितना ही ध्यान रखोगी, उतना ही सफल तुम्हारा नारी-जीवन होगा। बीजकोशों तथा शरीर-निर्माणकारी ग्रन्थियों से जो स्राव हो रहे हैं उन्हें अन्दर ही अन्दर खपने दो, उनसे अपने शरीर को पुष्ट होने दो। पूँजी जमा

करती चलो, आगे तो खर्च ही खर्च करना है। यही समय है, जब तुम अपने स्वास्थ्य को बना सकती हो। याद रखो, शक्ति की धारा तुम्हारी शिराओं में बह रही है; और शरीर के अणु-अणु में सौन्दर्य फूट रहा है। आज जीवन और यौवन के मुकुलित रहस्य तुम्हारे प्राणों में उदय हो रहे हैं। आज जवानी इठलाती-सी तुम्हारे द्वार आई है। उसके बहकावे में तुम खो जा सकती हो; उसे नियन्त्रित कर तुम चाहे जो सेवा ले सकती हो।

जब तुम निर्माण के पथ में हो तब सबसे पहले तुम्हें अपने शरीर को विकास के स्वाभाविक वातावरण में रखना है। इसके लिए पहली

**भोजन का प्रभाव**

बात यह है कि तुम्हें पोषक, हलका और सात्विक भोजन करना चाहिए। दूध, दही, घी, हरी तरकारियाँ तथा फलों का सेवन अधिक से अधिक करना चाहिए। प्रायः फलों का नाम सुन कर लोग व्यंग करते हैं और ग़रीबी की ओर इशारा करते हैं। मैं जानता हूँ, भारत-जैसे देश में, जहाँ बच्चों को पर्याप्त दूध भी नहीं मिलता, फलों की चर्चा अधिकांश की ग़रीबी का उपहास है। परन्तु फलों का मतलब केवल सेब और अंगूर ही नहीं होता। जिन्हें ये प्राप्त हों वे इनका सेवन करें; जो इनका उपयोग न कर सकती हों वे अधिक से अधिक मात्रा में पके सुर्ख़ टमाटो, गाजर, अमरूद इत्यादि का सेवन कर सकती हैं। मिठाइयों तथा गरिष्ठ भोजन से बचो—वे न केवल तुम्हारे शरीर को बल्कि मन को भी ख़राब करेंगे। सुबह खाली पेट या दोपहर के भोजन के दो घंटे बाद थोड़े पानी में नींबू

निचोड़ कर पिओ। त्रिफला का सेवन करो; उसे रात को भिगोकर सुबह उस पानी से आँखें धोओ। कब्ज़ कभी मत होने दो।

भोजन के बाद व्यायाम की बात आती है। व्यायाम का मतलब डंड-बैठक करना नहीं है। अपनी शक्ति के अनुकूल व्यायाम चुन लो।

**प्रकृति से घुलो-मिलो**

खुले स्थान पर खुली हवा में घूमना सर्वोत्तम व्यायाम है। इस शुद्धवायु को जितना पी सको, पिओ। यह अमृत है। कोई सेब तुम्हारे गालों पर वह सुर्खी नहीं ला सकता जो प्रातःकाल की स्वच्छ वायु ला सकती है। यथासंभव प्रकृति की निकटता प्राप्त करने की चेष्टा करो। जब समय मिले, नदियों के किनारे जाओ, बाग़ में टहलो। टहलते हुए, पानी की कल-कल करती, सदैव बहती हुई धारा को देखो; इसमें थकावट नहीं, शिथिलता नहीं, गति है, जीवन है। फूलों को देखो, कैसे प्यारे और भले लगते हैं, मानो प्रकृति का समस्त सौन्दर्य इनमें फट पड़ा हो। हँसते या मुस्कराते हुए तुम्हारा स्वागत करते हैं। इनमें तन्मय हो; इनका रंग तुममें खिल उठेगा। चिड़ियों की सुरीली तानों को सुनो—उनका फुदकना देखो। इससे तुम्हें मधुर और प्रसन्न होने का स्वभाव बनाने में सहायता मिलेगी।

चाहे साधारण पर स्वच्छ वस्त्र पहनो। तौलिये से खूब मल-मल कर स्नान करो। अपने इर्द-गिर्द स्वच्छता का वातावरण रखो। गरम पानी मे नींबू का रस मिलाकर उससे मुँह धोओ। रात को जल्द सो जाओ; सुबह जल्द उठो। दिन में पानी काफ़ी पिओ। इन

बातों से तुम अपना स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों बढ़ा सकती हो। एक सरल नुस्खा याद रखो—सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य के चार रक्षक हैं—१. खुली हवा. २. सादा तृप्तिकर भोजन. ३. व्यायाम और ४. प्रसन्नता।

परन्तु इस शारीरिक स्वास्थ्य से भी अधिक आवश्यक तुम्हारा मानसिक स्वास्थ्य है। सुन्दर और पवित्र विचार स्वास्थ्य के सब से बड़े रक्षक हैं। अपने मन में कोई भद्दा विचार या बुरी भावना न आने दो; गन्दे, उत्तेजक चित्रपटों, उपन्यासों या पुस्तकों से दूर रहो; आत्मविश्वास और उच्च भावनाएँ उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें पढ़ो। सब से हँसकर मधुर बोली बोलो। दुखी रहने की आदत छोड़ दो अन्यथा तुम्हारा सब सौन्दर्य नष्ट हो जायगा। स्वच्छ, सरल हास्य न केवल मन के मैल दूर कर देता है बल्कि शरीर में भी आकर्षण और कान्ति पैदा करता है।

सैकड़ों वर्षों से स्त्रियों को यही बताया गया है कि तुम दुर्बल हो, अबला हो, तुम कुछ नहीं कर सकतीं, पुरुष का मनोरंजन और शरीर रंजन ही तुम्हारा ध्येय है। लड़कियों के चारों ओर, बचपन से ही, आशंकाओं और सन्देहों का एक घेरा खींच दिया जाता है। इस घेरे के बाहर जाने की उन्हें मनाही है। तेरह-चौदह वर्ष की होते ही माता-पिता की आँखें उसके साथ-साथ लग जाती हैं। ऐसे वातावरण में पल कर वह सचमुच अबला हो गई है; उसकी अन्तर्ज्योति बुझ गई है और उसकी समस्त श्रेष्ठ मानवी शक्तियाँ शिथिल और कुण्ठित हो गई हैं।

**तुम भोग की पुतलियाँ नहीं हो!**

तुमसे कहता हूँ कि तुम दुर्बल नहीं हो, तुम अबला नहीं हो। तुममें असीम शक्तियाँ हैं। भूल जाओ कि तुम भोग की पुतली हो, भूल जाओ कि वासना-रंजन तक ही तुम्हारा जीवन है। भूल जाओ कि तुम वासनाओं से ऊपर नहीं उठ सकती। बेटियो, तुम इससे कहीं महान् हो। तुम निश्चय करो कि जब तक तुम्हारे शरीर और मन, स्वास्थ्य और अन्तःशक्तियों, यौवन और सौन्दर्य का पूर्ण विकास नहीं हो जाता तब तक तुम अपने को पूर्णतः पवित्र रखोगी। दिल फेंक कर सस्ता सौदा कर लेने वाले युवकों की बातों में न आओ; जो तुम्हें तुम्हारे शक्ति के आसन से गिराना चाहे, विष समझ कर उससे दूर रहो। अपनी पवित्रता को तब तक सब तरफ़ से अछूता और निष्कलंक रखो, जब तक प्रणय और यौवन की निधियाँ लिये किसी गृह में गृह-लक्ष्मी रूप में प्रवेश न कर लो।

जब मैं तुम्हें यह सब कह रहा हूँ तो मैं उन कठिनाइयों से अनभिज्ञ नहीं हूँ, जो इस अवस्था में लड़कियों और लड़कों के सामने आती हैं।

**आँधियों पर उड़ती जवानी**

मैं जानती हूँ, जवानी आँधियों को लिये आती है। बड़े-बड़े इरादे और निश्चय इससे वृक्षों की भाँति ढह जाते हैं। उपदेशों से इसे घृणा है; परम्पराओं से इसे चिढ़ है; नियमों और कानूनों का यह उपहास करती है; राजमार्गों की ओर आँख नहीं उठाती, और ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों तथा दुर्गम घाटियों को देख कर नाच उठती है। -मैं यह भी जानता हूँ कि जब यह आती है तब स्वप्नों पर तैरती और स्वप्नों का संसार बनाती आर्त

है। दिल उड़ा-उड़ा सा रहता है। पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ते। मन किसी को—किसी साथी को ढूँढ़ता है।

मैं यह सब जानता हूँ पर इतना जान-सुनकर भी तुमसे कहूँगा कि तुम संयम रखो; इसी से तुम पल्लवित, पुष्पित होगी; इसी से तुम बढ़ोगी। शक्ति का नियम है कि या तो तुम उसे अपने काबू में रखकर काम लो, नहीं तो वह स्वयं तुम्हें कब्ज़े में कर लेगी। यौवन की अपरिमित शक्ति तुम में करवट ले रही है; आज तुम में शक्ति की बाढ़ आई है, इसका उपयोग करने के लिए तुम्हें इस शक्ति को बाँध कर रखना होगा अन्यथा वह स्वयं तुम्हें बहा ले जायगी और एक बार तुम लड़खड़ाईं कि फिर न जाने अन्त कहाँ जाकर होगा।

**संयम शक्ति का कवच है**

आज तुम शक्ति की अधिष्ठात्री हो। याद रखो, यह यौवन और सौन्दर्य, जिसके कारण दुनिया आज इतनी मधुर और जीने-योग्य लगती है, तभी तक है, जब तक इस अन्दर-अन्दर उमड़ती शक्ति के बाहर निकलने—उसके क्षय के द्वार बन्द हैं। क्या तुम स्वयं यह नहीं चाहती कि जीवन का यह सुख बहुत दिनों तक तुम्हारा रहे? क्या तुम नहीं चाहती कि दीर्घकाल तक युवा बनी रहो; तुम्हारे हृदय में यही उत्साह, शरीर में यही स्फूर्ति, बहुत दिनों तक बनी रहे?

तब वासनाओं से बचना ही होगा। रहस्य में जो आकर्षण है उसे बना रहने दो। उस रहस्य का घूँघट मत हटाओ। अवाञ्छनीय कुतूहलों के पीछे पड़कर अनेक युवक-युवतियाँ मार्ग-भ्रष्ट हो जाती हैं।

इसलिए इससे बचो। सौन्दर्य की स्वाभाविक आकांक्षा को पनपने दो, उभरने दो। पर याद रखो, सौन्दर्य की रक्षा और वृद्धि संयम से ही हो सकती है। यदि तुम अपना मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखोगी तो शारीरिक स्वास्थ्य, बहुत करके, अपने-आप बना रहेगा पर अभ्यास करने से शारीरिक अस्वास्थ्य के बीच भी मनुष्य अपना मानसिक स्वास्थ्य क़ायम रख सकता है। अंग्रेजी की वें लाइनें, जिन्होंने अनेक निराश युवकों में आत्म-विश्वास की ज्योति जलाई, हेनली ने, घोर वेदनाओं से युद्ध करते हुए, अस्पताल में पड़े-पड़े लिखी थीं—

**रहस्य का घूंघट न हटाओ**

"I am the Captain of my soul.
I am the Master of my fate."

अर्थात् "अपनी आत्मा का नायक मैं हूँ। मैं अपने भाग्य का स्वामी हूँ।"

इस आत्म-विश्वास, इस मानसिक स्वास्थ्य, इस आत्म-नियंत्रण पर ही तुम्हारा सब सुख निर्भर है। बिना इसके तुम उन जिम्मेदारियों को नहीं निभा सकती जो प्रकृति ने तुम पर डाल रखी हैं। बिना इसके तुम नारीत्व के सम्पूर्ण आदर्शों से गिर जाओगी।

स्वतंत्रता के इस युग में—मैं कहना चाहूँगा, स्वतंत्रता के नाम पर आत्म-वंचना के इस युग में—स्त्रियों को आत्मसंयम और पवित्रता की बातें कहना, इन पर ज्यादा ज़ोर देना खतरनाक-सा है। पुरुष के मुँह से इन बातों को सुनना और भी

**पवित्रता के बिना तुम मिट्टी हो**

अच्छा नहीं लगता। पर सब खतरा उठाकर भी मैं कहूँगा कि पवित्रता के बिना तुम और चाहे जो हो, नारी नहीं हो। अपवित्र वासनाएँ पुरुष और स्त्री, युवक और युवतियों के लिए समान रूप से घातक हैं पर वे स्त्री के तो जड़-मूल को नष्ट कर देती हैं। इसमें कोई अपवाद नहीं। नारी के अपवित्र आचरण का, क्षणिक दोषों का भी, जितना दीर्घ प्रभाव पड़ता है, उतना पुरुष के दुराचरण का नहीं। एक ज़रा-सी गलती सुखी, सुन्दरी नारी के संसार को, क्षण-भर में, जलाकर धूल कर देती है।* वह उसे चिर रोगिणी, अपने लिए बोझ, अपने भावी या वर्तमान पति के लिए खतरनाक तथा रुग्ण एवं अभिशप्त सन्तानों की माँ के रूप में छोड़ जायगी। यह महती शक्तियों के सिंहासन से गिराकर उसे अपदार्थ कर देगी। वह अपने विष का डंक भावी सन्तति के हृदय में चुभा देगी और जाति के पतन एवं दुर्दशा का कारण होगी। अवश्य ही पुरुष भी उतने ही निन्दा के पात्र हैं, पर यह बात भुलाई नहीं जा सकती कि नारी माँ है—जाति की संस्कृति को आगे ले जाना

---

*"Impurity for men is bad enough, impurity for women is fatal, sooner or later and without any exceptions. Even the one occasion may be enough to turn a beautiful, happy girl into a fatally diseased woman, misery to herself, and even if she recovers, a source of danger to her future husband, and the mother of diseased or dead babies."

—Womanhood by Mona Baird, P. 96.

उसका मुख्य कार्य है। यह वह है जिसने युगों से स्वार्थों के संघर्ष और झंझावात में आत्मदान और प्रेम का दीपक बुझने से बचा रखा है। फिर शारीरिक दृष्टि से देखें तो भी ऐसी ग़लतियों का दण्ड उसे पुरुष से कहीं अधिक भोगना पड़ता है। इसलिए चरित्र से स्खलन, वासनाओं के अंक में पतन न केवल एक निजी बुराई है बल्कि एक सामाजिक बुराई—एक सामाजिक अपराध है।

पढ़ी-लिखी आधुनिक ढंग और फैशन की लड़कियों के सम्बन्ध में, आज, शंकाएँ अधिक बढ़ती जा रही हैं। यह उनके हाथ है कि इन शंकाओं को निर्मूल सिद्ध कर दें— यह उनके हाथ है कि अपने साथी लड़कों के कुरुचिपूर्ण, असभ्य एवं गंदे मज़ाकों का जवाब दृढ़ता से दें। उनका गौरव उनके हाथ है। इसीलिए बेटियो मैं तुमसे कहूँगा कि तुम वासनाओं के फ़ुसलाने में, उसकी मीठी, नशा करने वाली बातों में न आओ। जो साथी तुम्हें 'जीवन के आनन्द' के प्रलोभन बताता है, उसको समझो। उसके संस्कार गिरे हुए हैं; वह तुमसे पहले बहुतों को 'जीवन के आनन्द' का मार्ग बता चुका होगा। तुम्हें खाई में ढकेल कर वह अपना रास्ता लेगा और शायद मन में तुम्हें गालियाँ भी दे।

**चरित्रहीनता में 'रोमांस' नहीं है**

दुनिया के साहित्य ने, और लेखकों की फौज ने, हमें अनेक भ्रमपूर्ण बातें बताई हैं और निरन्तर प्रचार एवं पुनरुक्ति-द्वारा हममें अनेक ग़लत धारणाओं की सृष्टि कर रक्खी है पर मैं समझता हूँ कि शायद ही कोई धारणा इतनी भ्रमात्मक हो जितनी वासना-रंजन में आनन्द या

सौन्दर्य मानने की धारणा है। अभी थोड़े ही दिनों पहले, एक युवक ने, जो इसी रोग का शिकार था, अस्पताल से एक पत्र में मुझे लिखा था—"आश्चर्य है, जीवन में जो सत्य है उस पर लोग इस क़दर परदा क्यों डालते हैं। असदाचरण में कोई आकर्षण नहीं है। चरित्रहीनता में कोई 'रोमांस' नहीं है। यह अधम और पाशविक है।" ("Why won't people tell the truth about life? Immorality is not romantic. It is sordid and beastly.") उसके ये वाक्य तीव्र पर सत्य अनुभव से पूर्ण हैं।

याद रखो, वञ्चना और लोभ में कोई मज़ा नहीं है। आत्म-नियंत्रण में जो शक्ति, जो सौन्दर्य, जो आनन्द है, वह मांसल वासनाओं का शिकार होने में नहीं है। धारा को चीरकर तैरने में जो आनन्द और जो आत्म-विश्वास तैराक को होता है, उसकी तुलना धारा में निश्चेष्ट बहनेवाले से क्या की जा सकती है?

इसलिए तुम अपनी अन्तःशक्तियों को विकसित होने दो; अपने में साहस आने दो; किसी प्रकार के अनुचित दबाव में न पड़ो; कुरुचि और कुरूपता से दूर रहो; अपनी उस महान् विरासत को नष्ट न होने दो जो सहस्रों वर्ष के मानवता के इतिहास ने तुम्हें प्रदान की है।

**जवानी की पुरवैया**

आज जब जवानी की पुरवैया चलने लगी है; जब यौवन की अँगड़ाइयाँ तुम में लहरा रही हैं; जब तुम्हारा यौवन अधखिले फूल की भाँति जीवन से लुका-छिपी खेलने लगा है; जब तुम्हारे जीवन में मधु ऋतु आई है, रस प्राणों में

भर रहा है, स्वप्न से आँखें मुँदी जाती हैं, तब अपने पर क़ाबू रखकर चलो; तब कह दो कि मैं दुर्बलताओं का शिकार न हूँगी; मैं ऊँची उठूँगी, और मानव-सभ्यता का दीपक मेरे शुद्ध स्नेह-दान से प्रज्वलित होगा।

आज यौवन तुम्हारा है, आनन्द तुम्हारा है। तुम में असीम शक्तियाँ अपने को व्यक्त करने के लिए बेचैन हैं। उठो, और अपने में विश्वास रखकर जीवन में प्रवेश करो।

---

# जीवन-देवता की खोज में

अब, जब तुम्हारा स्वास्थ्य और यौवन विकास पर है, तब तुम्हारे मन में, अनेक नवीन आकांक्षाएँ उठती होंगी। प्रत्येक युवती के लिए यह स्वाभाविक है। घर वही है; माता-पिता वही हैं; सखी-सहेलियाँ वही हैं। कोई कष्ट नहीं, कोई अभाव नहीं। फिर भी कुछ कमी अनुभव होती है। एक बेचैनी, एक अभाव है, यद्यपि वह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है। अब किसी सखी के ब्याह की बातों में तुम्हारा मन अधिक रस लेता है;—यद्यपि ऊपर से तुम दिखाती इसके ठीक विपरीत हो। अब तुम्हारा मन भी किसी साथी की खोज करता है। तुम जानना चाहती हो कि तुम्हारी जिस सहेली का विवाह कुछ दिन पहले हो गया है,

**एक अस्पष्ट अभाव की अनुभूति**

उसके 'वह' कैसे हैं। जब तुम्हारे विवाह की बातें चलती हैं तो तुम वहाँ से उठ जाती हो पर किवाड़ों के पीछे तुम्हारे समस्त प्राण मानो तुम्हारे कानों में केन्द्रित हो जाते हैं। जो चिट्ठी-पत्री आती है, वह तुम्हारे हाथों से नहीं गुज़रती, और तुम जगत् की आँखों में उदासीन हो पर शायद ही कोई तुम से अधिक यह जानने को छटपटाता हो कि 'वहाँ' से क्या लिखा आया है। कोई छोटा भाई, कोई छोटी बहिन तुम्हारी ओर से जासूसी करती है और इधर-उधर से छन कर जो समाचार तुम्हें मिलते हैं, उनसे तुम उद्वेलित हो उठती हो, तुम्हारा हृदय धड़कने लगता है।

यह स्वाभाविक है। प्रकृति स्वयं तुम्हारे हृदय में उपस्थित होकर उसकी माँग कर रही है जो तुम चाहती हो। हृदय एक साथी चाहता है, एक साथी! ऐसा साथी, जो सब के बीच रह कर भी सर्वथा तुम्हारा हो। ऐसा साथी जो कभी तुम से न बिछुड़े; जिसके साथ चलते हुए जीवन के कण्टक-पथ पर फूल बिछ जायँ; जो दुःख में, सुख में, अन्धकार में, प्रकाश में; राज-मार्गों पर और दुर्गम घाटियों में तुम्हारा साथ न छोड़े; जो न केवल समाज की दृष्टि में, बल्कि हृदय के परम एकान्त में भी—जहाँ केवल तुम हो—तुम्हारा हो; जहाँ तुम हो और वह हो।

**साथी की चाह**

दर्शन में हम पढ़ते हैं कि ब्रह्म ने इच्छा की और एक से दो हो गया। तब से इस सत्य की 'अनन्तकाल से' बराबर आवृत्ति हो रही है। यह मानव की सनातन कामना है; एक से दो होने की; अपने

को गुणन करने की। सम्पूर्ण सृष्टि इसी लय में ओत-प्रोत है। इसी से मानव का समस्त व्यापार है; इसी से उसकी सभ्यता है; इसी से उसके धर्मों का विकास हुआ है; इसी से उसका साहित्य और दर्शन बना है और इसी से वह विनाश में भी फल-फूल रहा है; मृत्यु में भी जीवित है।

मैं ऊपर कहीं बता आया हूँ कि नारीत्व के पीछे सृष्टि और जाति की धारा को अविच्छिन्न रखने का रहस्य छिपा है। इस दृष्टि से, उपयुक्त आयु में, पुष्ट यौवन-काल में उसमें पुरुष को पाने की कामना उदय होती है। यही जीवन में काम का प्रवेश है। यह कोई ऐसी चीज़ नहीं जो अस्पृश्य हो; यह निरर्थक नहीं है। यह जीवन की महान् विभूति है। इससे दो प्राणी, एक-दूसरे के निकट आने में समर्थ होते हैं और जीवन का अपना उत्तरदायित्व पूरा करते हैं—यह उत्तरदायित्व, जो एक-दूसरे के सहयोग के बिना पूरा नहीं हो सकता।

**जीवन में काम**

इसलिए तुम्हारी यह ताक-झाँक, छिप-छिप कर माता-पिता की (तुम्हारे व्याह के सम्बन्ध में होने वाली) बातें सुनना, तेज़ी से दिल का धड़कना, ऐसी बातों से गालों पर लज्जा की हलकी-हलकी अरुणिमा, 'जाओ, मैं नहीं बोलती'—जैसे ठीक उलटा अर्थ प्रकट करने वाले वाक्य बिल्कुल स्वाभाविक हैं। इस उम्र में लज्जा स्वाभाविक है पर सच पूछो तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है। बल्कि उचित तो यह है कि तुम मर्यादा की रक्षा करते हुए भी, अपनी माँ या बड़ी

बहिनों के द्वारा अपने जीवन-साथी के निर्णय में भाग लो।

पुराने समय में गुरुजन, पुरोहितों, नाइयों तथा अन्य सूत्रों-द्वारा, कन्या के लिए उपयुक्त वर का चुनाव करते थे। वे गुप्त रूप से लड़के के कुल-शील, उसके स्वभाव, उसके रंग-ढंग का पूरा पता लगाते थे, और तब कोई निर्णय करते थे। आज की अति-आधुनिका लड़कियाँ (तथा आन्दोलक) स्वयं पति-निर्वाचन के पक्ष में हैं। इसमें कुछ अनुचित भी नहीं है परन्तु उनके निर्णय प्रायः भावावेश में किये जाते हैं। रूप का क्षणिक आकर्षण प्रेम के अतिरंजित और दिल गुदगुदाने वाले वादे, जो कदाचित् तोड़ने के लिए ही किये जाते हैं, प्रायः जीवन की कठोर वास्तविकताओं को आँखों से ओझल कर देते हैं। जो बात परस्पर कही जाती हैं, उत्तेजना के क्षणों में कही जाती है और उनका कुछ मतलब नहीं होता। सच पूछें तो दोनों, दोनों के विषय में कुछ भी जानते नहीं होते और उनके आकर्षण में प्रेम का वह अमृत नहीं होता, जिसके पीछे आध्यात्मिक ज्योति होती है।

**तब और अब**

इसलिए आजकल की परिस्थिति में दोनों में से एक भी साधन विश्वसनीय नहीं रह गये हैं। औचित्य और सत्य इन दोनों के समन्वय—मध्यमार्ग में है। अर्थात् लड़के का चुनाव माता-पिता अथवा गुरुजनों एवं लड़की दोनों पक्षों की सम्मति से होना चाहिए। अभिभावकों को, इस विषय में उदार होने की आवश्यकता है, और लड़कियों को संयम और नियंत्रण से काम लेने की। दोनों को समझना चाहिए

कि यह सम्पूर्ण जीवन का प्रश्न है। और उत्तम एवं उपयुक्त निर्वाचन पर न केवल उन दोनों का सुख बल्कि समाज का कल्याण भी निर्भर करता है।

**ये स्वप्निल आकांक्षाएँ!**

और तुम्हें इस समय, जब तुम्हारा हृदय जीवन-साथी की खोज में उड़ा-उड़ा फिरता है, स्वप्नों की दुनिया से कठोर भूमि पर उतरना पड़ेगा। तुम शान्त होकर सोचो और निश्चय करो कि कैसा पति मिलने से तुम सुखी होगी। दुनिया में सब गुण सब में नहीं होते; इसलिए हमें चुनाव करना पड़ता है। उपन्यास के नायक और नायिकाओं से विवाहित जीवन के पति-पत्नी भिन्न होते हैं। आजकल का लड़का जैसे चाहता है कि हमारी पत्नी परी-सी खूबसूरत हो जिसे देखकर दूसरों को ईर्ष्या हो; पढ़ी-लिखी हो, सभ्य समाज में बैठने लायक हो, कला-कौशल में एक हो, एक-से-एक कट के कपड़े बनावे, सुन्दर तस्वीरें खींच सके, खाना ऐसा बनावे कि याद करके मुँह में पानी भर जाय; बोले यों मानों शर्बत घोलती हो; हँसे तो चाँदनी छा जाय, वैसे ही लड़कियाँ भी चाहती हैं कि पति ऊँचे-से-ऊँचे पद पर हो; सैकड़ों की आय हो; जहाँ जाय लोग उसे हाथों-हाथ लेने को तैयार रहें; दास-दासियों की कमी न हो; जीवन की सम्पूर्ण सुविधाएँ प्राप्त हों; थोड़े ही आदमी घर में हों। ज़िन्दगी आराम और चैन से बीतती रहे। प्रत्येक दिन सोने का हो, प्रत्येक रात मधु की वर्षा करती आवे। मतलब दुनिया में जितना भी सुख है वह सब हमें पति-गृह में बना-बनाया, एकत्र किया हुआ, मिल जाय।

यदि तुम भी इसी कोटि में हो तो मैं तुम से कहूँगा कि जितनी जल्द हो सके, इन व्यर्थ के स्वप्नों से अपने को मुक्त कर लो। विवाहित जीवन एक तिलिस्म है जिसमें प्रवेश करने की कुंजी सन्तोष और सहनशीलता है। इसलिए अपने पति के विषय में बहुत ऊँची उड़ान न भरो। यह भी कह दूँ कि ऊपर की सम्पूर्ण सुविधाएँ जिन घरों में हैं उनमें भी स्त्रियाँ घोर मानसिक व्यथाओं से छटपटाती देखी जाती हैं। जीवन की सफलता के लिए सब से पहली आवश्यकता स्वास्थ्य की है। तुम्हारी सब से पहली माँग यह होनी चाहिए कि पतित्व की मर्यादा के लिए चुना जाने वाला युवक पूर्णतः स्वस्थ और नीरोग हो। यही वह पूँजी है जिसपर जीवन की सम्पूर्ण उठान निर्भर है। यही वह चीज़ है जो जीवन की अँधेरी घड़ियों में भी मनुष्य का सहारा है। इसी पर सन्तति और समाज का भविष्य निर्भर है। संसार की सम्पूर्ण सुविधाएँ मिल कर भी इसकी तुलना नहीं कर सकतीं। एक अस्वस्थ धनिक केवल उस गधे के समान है जिस पर अशर्फ़ियों की बोरियाँ लदी हों। नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन उसके लिए अस्पृश्य हैं। शरत् की चाँदनी उसके लिए विष है। वसन्त की प्रभाती सुगन्धित वायु उसे तीर सी लगती है। इसके विरुद्ध उस ग़रीब का ख्याल करो, जिसका ऊँचा सिर, उठा हुआ सीना, बल्लियाँ छिटकी भुजाएँ हैं; जिसमें बिजली की स्फूर्ति है; जो रात-दिन काम करते नहीं थकता। मोटी रोटियाँ उसके पेट में जाते ही गल जाती हैं। बरसात की भीगी हवाएँ उसमें स्वप्नों

**विवाहित जीवन एक तिलिस्म है!**

की सृष्टि करती हैं और वह रस से भरकर गाने लगता है।

उस धनिक और इस ग़रीब में क्या तुलना? पहला उस लाश के समान है जो सोने की रथी पर पुष्पों और कपड़ों से सजाई हुई है; और दूसरा उस जीवन-प्रवाह के समान है जो एकाकी चट्टानों से टक्करें लेने को तैयार है। आज-कल जब समाज में धन की वितृष्णा बहुत बढ़ गई है, और एक झूठी प्रवञ्चनापूर्ण सभ्यता ने उसे बहुत अधिक महत्त्व दे रखा है तब आर्थिक सुविधाओं का ध्यान रखना ही है; परन्तु इतना नहीं कि वह अन्य आवश्यक बातों पर पानी फेर दे! अधिकार और स्वतंत्रता के लिए बहस करने वाली अनेक शिक्षिता लड़कियों को मैंने धन के लिए अपने को बेचते देखा है। अभी कुछ ही दिन पूर्व दो ग्रेजुएट लड़कियों ने एक के बाद एक, एक धनिक से केवल पैसे के लिए विवाह किया। स्पष्ट शब्दों में यह पैसे के लिए अपने शरीर का व्यवसाय है--यह एक प्रकार की वेश्यावृत्ति है। मैं यह नहीं कहता कि तुम अर्थ-सुख का विचार न करना; कहता मैं यह हूँ कि रुपया स्वास्थ्य का स्थान नहीं ले सकता और स्वस्थ ग़रीब तथा धनिक अस्वस्थ में से चुनना ही पड़े तो निस्संकोच तुम पहले को चुन सकती हो।

**वह धनिक और यह ग़रीब!**

स्वास्थ्य के बाद जो चीज़ विवाहित जीवन की सफलता के लिए लड़के में आवश्यक है, उसका शील, उसका स्वभाव है। एक बड़े विद्या से बोझिल विद्वान् पति को लेकर क्या करोगी, यदि उसमें उदारता नहीं है, यदि वह नम्र स्वभाव का नहीं

**विद्या से बोझिल नहीं, मधुर पतित्व**

है, यदि वह तुनुकमिज़ाज और चिड़चिड़ा है। एक दूसरे के प्रति आदर और सम्मान का भाव सुखी विवाहित जीवन के लिए आवश्यक है। ज्ञान और योग्यता की अपेक्षा स्वभाव की मधुरता कहीं ज़रूरी है। मानसिक भावों की अपेक्षा दैनिक व्यवहार पर जीवन का सुख अधिक निर्भर करता है। इसलिए जिससे तुम्हारे विवाह की बातचीत हो रही है, उसमें दूसरा गुण यह होना चाहिए कि वह मधुर और गम्भीर स्वभाव का हो।

विद्या-योग्यता, सामाजिक मर्यादा, आर्थिक स्थिति ये तीन बातें इसके बाद आती हैं। बस, इतनी बातों का विचार करने के बाद तुम, गुरुजनों की सहायता से, उन्हीं के द्वारा निर्णय कर सकती हो।

परन्तु कोई नहीं कह सकता कि इतनी सावधानी के बाद भी किसी लड़की के भाग्य में क्या लिखा है? कभी-कभी ऐसा होता है, कि सब कुछ है, शान्ति-सुख, स्वर्ग का आनन्द। एकाएक बिजली टूटती है, और एक क्षण पूर्व जहाँ हास्य का झरना बहता था, आँसुओं की निरन्तर वर्षा होने लगती है। या यह कि जिसे हम हंस समझते थे, वह कौवा निकलता है, और जो चरित्रवान् एवं संयमी समझा जाता था, घोर लम्पट और प्रवञ्चक सिद्ध होता है। पहले प्रकार के उदाहरण में मैं रजनी को पेश करता हूँ। यह लड़की बड़ी भली, रूपवती, स्वस्थ थी। सौभाग्य-वश उसे पति ऐसे मिले कि आदर्श। स्वस्थ, संयमी, उदार, रूपवान, एक अच्छे पदाधिकारी तथा विद्वान्। लोग ईर्ष्या करते थे। सहेलियाँ

हंस भी कौआ निकल जाता है

कहतीं, स्वर्ग तेरे पास उतर आया है। उसे स्वयं अपने ऐसे अकल्पित मुख से भय मालूम होता था। पर एक दिन पति कहीं 'कार' से जा रहे थे; 'एक्सीडेंट' हुआ, और उनकी मृत्यु रजनी पर उल्कापात के समान गिरी। दूसरा उदाहरण प्रकाश का है। वह लड़का, अपने आदर्शों और सिद्धान्तों में पक्का, सदाचार की मूर्ति समझा जाता था। दो वर्ष के लिए विदेश गया और वहाँ से न जाने क्या होकर लौटा। बेचारी प्रभा का दिल ही टूट गया। जैसे ठीक बसन्त में किसी ने बुलबुल का घोंसला उजाड़ दिया हो!

**गाय के साथ भेड़िया और देवता के साथ चुड़ैल!**

चाहे हम जितनी सावधानी रखें, जीवन में घटनाएँ होती रहेंगी। इसीलिए सब मिलाकर विवाह स्वयं एक घटना है—एक जुआ है। जो तुम्हारे हाथ आ जाय। इस जुए के कुछ नियम हैं, और सतर्कता से हम अन्ध खाइयों में गिरने से बच सकते हैं। फिर भी दुनिया अजीब जगह है। कहीं गाय के हाथ भेड़िया बँध जाता है और कहीं देवता के पास चुड़ैल आ जाती है। ऐसी आकस्मिक निराशाओं के बीच केवल तुम अपनी रक्षा कर सकती हो। सुख बहुत करके अपनी मानसिक प्रवृत्तियों पर निर्भर है। ऐसी घटनाएँ हों तो अपनी स्नेह-धारा को रुद्ध मत करो; केवल उसकी दिशा मोड़ दो। कुटुम्ब के बच्चों को अपना लो, उनमें अपने प्रेम की वर्षा करो; दुखियों और पीड़ितों से अपना हृदय जोड़ो। तुम्हें प्रेम की अमृतशक्ति का अनुभव होगा और जिसे खोया है उसे पुनः पा जाओगी।

पर ये कैसी अप्रासंगिक बातें मैं करने लगा। अभी तुम्हारा ब्याह भी न हुआ, तुम्हारे 'वे' भी न आये और मैं भविष्य की आकस्मिक आशंकाओं को ले उड़ा। आकस्मिक घटनाएँ तो होती ही रहेंगी। सवाल यह है कि सामान्यतः स्वस्थ और विकसित लड़कियाँ कैसा जीवन-साथी चुनें और उसके साथ जीवन बिताने के लिए क्या तैयारियाँ करलें।

ब्याह एक जीवन-व्यापी कर्त्तव्य का आरम्भ है। इसके लिए तुममें वह श्रद्धा होनी चाहिए जो उपासना-मन्दिर में प्रवेश करते समय उपासक के हृदय में होती है। सचमुच यह उपासना का ही जीवन है। इसमें भी उपास्य के निकट, देवता के निकट, अपना हृदय, अपना जो कुछ श्रेष्ठ है, उँडेल देना है। वही सतत दान, वही आत्मार्पण, वही गहरी श्रद्धा और निष्ठा, वही तन्मयता यहाँ भी चाहिए। शास्त्रों में पति को देवता कहा गया है। अपने जीवन-देवता को पाने के लिए तुम्हें गहरा प्रयत्न करना है। जीवनव्यापी यह उपासना कैसी कठिन होगी। दीर्घकाल तक आत्म-निवेदन और उत्सर्ग का यह जीवन! इसमें जो कुछ सुन्दर और मधुर है, वह तुम्हारी अपनी अनुभूति है। कठिनाइयाँ आयेंगी, अँधेरे दिन आयेंगे, स्वजन प्रतिकूल हो जायँगे, तब भी श्रद्धा और आत्मदान का यह यज्ञ तुम्हें बराबर करते जाना होगा—जीवन की तीर्थ-यात्रा बराबर जारी रखनी होगी।

**उपासक की श्रद्धा चाहिए**

इसके लिए पहले तो तुम्हें प्रभु में गहरी श्रद्धा चाहिए! अन्तर में वह श्रद्धा और जीवन-देवता के प्रति समर्पण का भाव लिये, दुःख में,

मुख में, धैर्य से काम लेते हुए तुम्हें चलना होगा। बस यह विश्वास ही तुम्हारा संबल है। इस निश्चय के साथ, हे प्रेमयोगिनी बहिनो, तुम अपने जीवन-देवता के मन्दिर में प्रवेश करो। परवा नहीं, परिस्थितियाँ प्रतिकूल हों, परवा नहीं मार्ग में काँटे बिछे हों, परवा नहीं यदि मार्ग को दुर्गम चट्टानें रोके खड़ी हों। सर्वग्राही प्रेम तुम्हारा है; विश्वास तुम्हारा है, निर्मल हृदय तुम्हारा है। तुम अवश्य सुखी होगी। उपासना की घंटी बजने दो, और पूजा आरम्भ करो।

---

# पहली भेंट

एक अपेक्षा-कृत अपरिचित मनुष्य के साथ, जीवन-भर के लिए जुड़ जाना ऐसा अनुभव है जो स्त्री को जीवन में एक ही बार होता है।

**दो धड़कते दिल !**

जब पहली बार दोनों एक दूसरे के हाथ पर हाथ रख कर, अग्नि को साक्षी रखकर, प्रतिज्ञा करते हैं;—गुरुजनों और सम्बन्धियों के सामने, तब हृदय की क्या दशा होती है, इसका स्मरण करो। संसार की भीड़ में चलते हुए, एक विशिष्ट पुरुष के हाथ सर्वस्व समर्पण, वह सिहरन, एक उत्कण्ठा, एक अनिश्चितता, एक उद्वेग, एक उल्लास। पुरुष का वह प्रथम स्पर्श, जिसका अनुभव तुमको आगे बहुत होगा पर वह बात न होगी। एक मृदु-मृदु नशा, जिससे आँखें मुँदी जाती हैं; दिल धड़कता है कि

धड़कता है; प्राण सिमिटकर किसी में केन्द्रित हुए जाते हैं—चेतना लुप्त हुई जाती है। दो जीवन आज एक हो गये हैं; दो प्राण एक में मिल गये हैं; दो अलग व्यक्तियों ने मिलकर एक संयुक्त धर्म की दीक्षा ली है।

**अपने पराये और पराये अपने हो जाते हैं!**

यह विवाह! सोचो तो, कैसी निराली चीज़ है। कल तक जो पराया था, आज सर्वथा अपना हो गया, और जो अपने थे, वे तुम्हारी अधिकार-सीमा से दूर चले गये हैं। वह माँ, जिसने अपने रक्त-मांस से तुम्हें गढ़ा है और अपनी सतत चिन्ता और जागरूकता से तुममें चेतना का विकास किया है, जिसने तुम्हारे स्नेह में न रात देखा, न दिन, तुम्हारी ज़रा-सी बीमारी में जो सौ-सौ बार मर कर जी गई है; वह पिता, जो ऊपर से कर्त्तव्य-कठोर पर अन्दर से अत्यन्त प्रेमल और कोमल हैं, जिन्होंने कठिनाइयों और संघर्षों के बीच भी तुम्हें जो कुछ हो सका, दिया और तुम्हारे लिए किया है; वे भैया जिनके स्नेह-तले तुम बड़ी हुई हो; वे छोटे भाई जो तुम्हारे स्नेह से बढ़े हैं, जो तुममें होने वाले परिवर्तनों और दुनिया की परिस्थितियों से अनजान हैं, जो तुम्हारे 'उनके' प्रति इसलिए क्रुद्ध हैं कि वे उनकी दीदी को न जाने कहाँ पकड़ ले जायँगे और दीदी है कि हमें छोड़कर चली जा रही है—न जाने इसे क्या हो गया? वे बहिनें, जो तुम्हारे प्रति प्रेम और अधिकार से भरी हुई रही हैं, जिनके प्रति तुमने अपने हृदय में माता की ममता अनुभव की है। वे सहेलियाँ, जिनके विनोद और व्यंग,

जिनकी चुटकियाँ, जिनका रूठना, जिनकी चुहल और छेड़ जीवन को जीने-योग्य बनाती रही है। ये सब आज दूर चली जायँगी। वह आँगन, जिसमें खेलकर तुम बड़ी हुई हो, जिसमें तुम्हारे अगणित घरौंदे बने और मिटे; वे कोठरियाँ जिनमें तुम्हारी गुड़ियाँ जन्मीं, बड़ी हुईं और उनका विवाह हुआ। वे दीवारें, जो तुम्हारी अत्यन्त परिचित सखी-सी तुम्हारे साथ हिली-मिली हैं; आज से फिर तुम्हारी न होंगी। अब भी तुम इस घर में आओगी, पर फिर अपने अधिकार के साथ, अपनी सम्पूर्ण प्राण-वेदना से, यहाँ की चीज़ों को उसी प्रकार अपना न सकोगी।

और दूसरी ओर एक घर, जिसके आँगन में तुमने कभी प्रवेश न किया; जिसके द्वार, जिसकी दीवारें, जिसकी प्रत्येक वस्तु तुम्हारे लिए अपरिचित है; जिसके अधिवासी तुम्हारे लिए नये हैं, आज एक क्षण में तुम्हारा अपना हो गया है। हाँ, पराया होकर भी यह घर अपना है और अपना होकर भी पितृ गृह पराया है। मानो, किसी ने जादू से तुम्हारा वह चिर-परिचित गृह, चिर-परिचित जीवन एक क्षण में नष्ट कर दिया हो; और उसकी जगह एक सर्वथा अपरिचित गृह बन कर खड़ा है। और तुमसे कहा जाता है कि यह तुम्हारा घर है!

यही विवाह का जादू है, और तुम्हें परिस्थिति चाहे जैसी अटपटी लगे, रहना तुम्हें इसी में है, जीना तुम्हें इसी में है। यही तुम्हारा मन्दिर है और इसी में तुम्हें जीवन के कर्त्तव्य पूर्ण करने होंगे और खेल खेलने होंगे।

मैं जानता हूँ कि यह कठिन है। इसमें आश्चर्य स्वाभाविक है;

चिर-परिचितों की बिछुड़न की वेदना स्वाभाविक है। तुम्हारा समस्त भूतकाल मानो तुमसे छिन गया है, और आज बिल्कुल नये सिरे से रचना और सृष्टि करने का काम तुम्हारे सिर आ पड़ा है। वह माँ की गोद एकाएक दूर पड़ गई है, जो दुनिया में और कहीं नहीं मिल सकती। तुम्हें बचपन के दिन याद आते होंगे। तुम्हारा मन बार-बार मायके की ओर दौड़ता होगा। यह सब नितान्त स्वाभाविक है।

इस प्रतिकूल परिस्थिति में अपने समस्त हृदय का अर्घ्य लिये, तुम देवता के मन्दिर की देहरी पर खड़ी हो। यह झिझक, यह भूत के बन्धन, जो बार बार तुम्हारे पाँव से उलझते हैं, दृढ़ता-पूर्वक दूर कर दो और जो सत्य है उसे अपनाओ। तुम्हारी दृढ़ता, तुम्हारे कौशल, तुम्हारी बुद्धि पर ही भविष्य के सुखों की नींव पड़ेगी।

आज पहली बार तुम उन्हें देखोगी। आज पहली बार आँखें मिलेंगी, जैसी पहले कभी नहीं मिलीं। लज्जा से अरुण गाल, सिर उठता नहीं, उँगलियाँ पलंग के वस्त्रों के रेशे उधेड़ने में लगी हुई; ओठों तक शब्द आते हैं और रुक जाते हैं। प्रयत्न से भी अधूरे सूत्रों में निकलने वाले अध-बोले शब्द। इनके बीच पति का प्रथम स्पर्श। शरीर में बिजली; दिल का ज़ोर से धड़कना, हल्की-सी बेहोशी, चेतना इतनी कि चेतना का लोप हुआ जा रहा है। शरीर, मन, प्राण जैसे अचेत हुए जाते हैं। आँखें 'उनको' देखना चाहती हैं पर देख नहीं पातीं, कान उनको सुनना चाहते हैं पर केवल ध्वनि का एक गुंजन होता है, जैसे कुछ

**प्रथम स्पर्श !**

भी स्पष्ट नहीं। वाणी ओठों तक आती है और लौट जाती है। भावों की विपुल बाढ़ में सब अस्त-व्यस्त है। मन की की कामनाएँ मुखरित होकर भी मौन हैं, और शरीर जैसे मधु में डूबा जा रहा हो।

यह तुम्हारी प्रथम भेंट—इसी पर तुम्हारे जीवन के अगले दिन निर्भर हैं। आज तुम जो चाहो ले लो। आज देवता का हाथ खुला है:

**यह रात फिर न आयेगी !**

उससे तुम सब कुछ पा सकती हो। याद रखो, यह रात फिर न आयेगी। आज तुम 'उन पर' जो प्रभाव डालेगी, वह स्थायी रहेगा--कम से कम उसका प्रभाव बहुत दिनों तक रहेगा।

इसलिए तुम्हारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि पति देवता समझें कि तुम उनके निकट अपने हृदय का समस्त सौरभ---समस्त प्रेम लिये आई हो, और यह कि तुम सर्वथा उनकी हो। उनके प्रति सम्मान से तुम्हारा हृदय पूर्ण है। लज्जा तो तुम्हारी स्वाभाविक है पर हृदय पर नियंत्रण रखो, और पति की बातों का चुने, थोड़े, नम्रता और प्रेम भरे हुए शब्दों में उत्तर दो।

जब तुम्हारा हृदय भावों के तूफान में बहा जा रहा है तब समझ में नहीं आता कि कैसे बातें की जायँ। प्रायः पति और भी मूर्ख होते

**परिचय के प्रथम क्षण**

हैं। पुरानी सभ्यता में पली हुई नारियाँ पति के पाँव की ओर बैठ जाती थीं; उनके चरणों में सिर रख देती थीं, और चरणों, को ज़ोर से पकड़ लेती थीं, मानों कहती हों--आज से मैं तुम्हारी हूँ, मेरा सर्वस्व

तुम्हारा है। मुझे कभी न छोड़ना। शिष्ट और संस्कृत पति हाथ से सिर सहलाते हुए मानो उसे आश्वासन देता था। स्त्री पाँव दबाने लगती थी। इसी प्रकार परिचय का आरम्भ होता था, अपने-आप बातें निकल पड़ती थीं। आज भी मैं तुम्हें यही सलाह देना चाहूँगा पर कदाचित् आज की शिक्षिता लड़कियाँ इसे उचित न समझें। कदाचित् वे इसे दासता का चिह्न मानें। पर इस प्रकार की मनोवृत्तियों के साथ विवाहित जीवन का आरम्भ करना अच्छा न होगा; कदाचित् वह दुःखदायी भी है। चरणों में प्रणाम करना, चरण दबाना दासता का चिह्न नहीं है; यह सर्वस्वार्पण और आत्म-निवेदन का लक्षण है। यह प्रेम और भक्ति का चिह्न है। नारी के हाथ में पुरुष-हृदय-विजय का यह अत्यन्त शक्तिमान अस्त्र है। वह विश्वासपूर्वक इसका उपयोग कर सकती है।

पर यदि तुम अभिमान से भरी हुई हो तो तुम सिर दबा सकती हो, किन्तु मैं तुमसे यही कहूँगा कि आज कोई विभेद, कोई दुर्भावना

**झुककर विजय करो !**

बीच में न आने दो। नम्रता और मधुरता की बातें करो—और नम्रता तथा मधुरता के साथ बातें करो। याद रखो, पति प्रायः असम्भव माँगें लिये स्त्री के पास आता है। उसका युग-युग से सञ्चित अहंकार समझता है कि तुम्हें अपनी पत्नी बनाकर उसने तुम्हारा उद्धार कर लिया है। पर औसत पुरुष जीवन के मामलों में औसत नारी से कहीं अधिक मूर्ख भी होता है। चतुर नारी, कौशल और प्रेम से, उसे पूरी तरह

वश में कर सकती है। उसके इस अहंकार का खंडन करके तुम केवल उसके अहंकार को और उत्तेजित करोगी। गरमी से उठी भाफ शीतल ऊँचाइयों के स्पर्श से जल्दबिन्दु बनकर बरस पड़ती है। नम्रता से स्पर्श करो, उसका अहंकार पानी-पानी हो जायगा। कहो—'मैं आपके योग्य तो नहीं (चाहे वही तुम्हारे योग्य न हो!) पर जब आपकी हो गई हूँ तो मुझे निभा लें—मेरी ग़लतियों और दोषों को न देखें।' पुरुष का अहंकार, इतने से, तृप्त हो जाता है। इससे उसमें एक विशिष्ट भाव का उदय होता है, अपनी श्रेष्ठता की अनुभूति होती है। वह समझता है कि तुम हृदय से उसकी हो, और विश्वास के साथ, तुम्हारे प्रति निजत्व के बन्धनों में बँध जाता है।

मैं कह चुका हूँ कि जीवन में यह मधुयामिनी फिर न आयेगी। आज सब-कुछ मृदु है; सब-कुछ मधुमय है। अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण रखते हुए भी कोई ऐसी बात न होने दो जिसमें शंकाएँ और विभेद पैदा हों। दृढ़ निश्चय कर लो कि आज तुम उनके हृदय को जीत लोगी। तुम्हारे मुँह से जो कुछ निकले, निजत्व और प्रेम में डूबा हुआ हो। तुम्हारे प्रत्येक अंग-संचालन, बैठने-उठने में उच्च-संस्कृति और कुलीनता की छाप हो। एक साधारण भ्रम यह है कि यह रात भोग-विलास और वासना-रंजन की रात है। पति-पत्नी प्रायः निर्बन्ध विलासिता के गर्त्त में निमग्न हो जाते हैं, और जो चस्का लगा सो लगा। वह तब तक चलता रहता है, जब तक पति के मुख की

**वासना नहीं, प्रेम का खेल**

झुर्रियाँ या स्त्री का पीला मुख यौवन की मधुऋतु की समाप्ति की घोषणा नहीं करते। याद रखो, पुरुष उतावला प्राणी है। जब उसमें वासना जगती है तो वह सब कुछ भूल जाता है। वह तुरन्त सब कुछ भोग लेना, सब कुछ पा लेना चाहता है। पुरुष में वासना की ऐसी आग कभी न जगाओ; अगर हो तो भी उसे संयत करो; मर्यादा में रखो। गृहस्थ-जीवन कोई भोग-विलास का जीवन नहीं है। बल्कि वासनाओं पर क्रमिक विजय प्राप्त करने का साधन है। अवश्य ही इसमें कामनाएँ भी हैं, वासनाएँ भी हैं—और वे व्यर्थ नहीं हैं पर कामनाओं के पीछे यदि प्रेम का शाश्वत आत्म-निवेदन और विवेक का, कर्त्तव्य का विमल प्रकाश नहीं है तो उसमें केवल क्षणिक नशा है; कोई वास्तविक आनन्द नहीं।

तुम्हें और तुम्हारे पति को भी याद रखना चाहिये कि तुम्हारे पास स्वास्थ्य और यौवन की जो पूँजी है उससे बहुत दिनों तक तुम्हें दुकान चलानी है। इसी पर तुम दोनों का सुख बल्कि भावी सन्तति का भी सुख निर्भर है इसलिए पारस्परिक व्यवहार में संयम सदा कल्याणकारी होगा।

**बोलो प्रेम के दो बोल**

यद्यपि सामान्यतः स्त्री अधिक बातूनी होती, है, और बातूनी आदमी की ओर आकर्षित भी जल्द होती है किन्तु प्रथम परिचय में वह प्रायः अबोली रह जाती है। जब तक प्रेम से उसका हृदय भरा होता है; जब तक यह प्रेम फूट कर बाहर नहीं निकलता, वह बहुत कम

बोलती है। पुरुष, आरम्भ में, यही चाहता है कि वह बोले: न केवल मेरे प्रति प्रेम से भरी हो, बल्कि अपनी वाणी में उस प्रेम का उपहार भी दे। इसलिए तुम्हें कुछ न कुछ बोलना तो चाहिए ही। तुम्हारे शब्द चुने हों, तुम्हारा स्वर प्रेम से कम्पित हो; उसमें ध्वनि और गूँज हो। उस पर बीच बीच में लज्जारुण मुस्कराहट की चाँदनी छिटकाती जाओ।

विश्वास और प्रेम, संस्कृति और शील के साथ यह मधुयामिनी बीतने दो। विजय तुम्हारी है।

---

# जीवन की पाठशाला में

यह शिक्षा अधूरी है !

माना, तुम पढ़ी लिखी हो; तुमने स्कूल अथवा कालेज में या घर पर ही, अच्छी शिक्षा प्राप्त की है पर तुम्हारी वास्तविक शिक्षा का आरंभ अब हुआ है। अभी तक की तुम्हारी शिक्षा किताबी थी। तुमने भाषा सीखी; तुमने साहित्य, इतिहास इत्यादि विषयों का सैद्धान्तिक या विवरणात्मक रूप जाना। पर तुम्हें यह नहीं सिखाया गया कि जीवन में विविध सम्बन्धों का सामञ्जस्य कैसे किया जाता है; विरोधी वातावरण में भी सफलता कैसे प्राप्त की जा सकती है; सुख और शान्ति कैसे प्राप्त होगी। सिद्धान्त और व्यवहार में बड़ा अन्तर है। आज की शिक्षा आचरण से दूर हट गई है। तत्वज्ञान का एक अध्यापक प्रायः कट्टरपंथी होता है, जब

तत्त्वज्ञान जीवन में उदारता और ऐक्य, प्रेम और सौहार्द की शिक्षा देता है। इतिहास के अध्यापक के जीवन को देखकर कौन कह सकता है कि इतिहास की युगानुभूत शिक्षाओं को उसने हृदयंगम किया है? काव्य के शिक्षक का हृदय, रसानुभूति से शून्य हो सकता है। वस्तुतः आधुनिक शिक्षा-प्रणाली इतनी शुष्क और निर्जीव हो गई है कि उसमें जीवन का स्पन्दन रह नहीं गया है। वह बिल्कुल संस्कारशून्य हो गई है। इसलिए उससे जो लाभ होने चाहिएँ वे भी नहीं होते; उलटे स्वभाव ऐसा बन जाता है कि नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनने में कठिनाई होती है; नवीन प्रेरणाएँ और स्फूर्तियाँ उत्पन्न नहीं होतीं या होती भी हैं तो जीती नहीं, बढ़ती नहीं—शीघ्र नष्ट हो जाती हैं।

इसलिए मैं उस शिक्षा की बात नहीं कहता। मैं उस शिक्षा की बात कर रहा हूँ जो तुम में जीने की शक्ति उत्पन्न करेगी; जो तुम्हें मानव-जीवन की समस्याओं को सुलझाने और आदर्शों के लिए प्रयत्न करने का बल देगी; जो निराशाओं के अन्धकार में भी तुम्हारे पाँव ठीक रास्ते पर रखेगी और दुःखदायी परिस्थितियों में भी तुम्हारी मानसिक शान्ति कायम रख सकेगी।

तुमने जीवन की इस पाठशाला में प्रवेश किया है। यहाँ आकर तुम्हारे बहुत से स्वप्न टूट जायँगे, बहुतेरी पूर्व-कल्पित धारणाएँ असत्य सिद्ध होंगी; तुम जब सुख के सपनों पर झूलती होगी तभी उल्कापात होगा। इसलिए तुम्हें जीवन में सफलता प्राप्त करने के साधनों का संग्रह करना होगा; तुम्हें प्रति पग पर सीखना होगा।

जैसा मैं कह चुका हूँ, स्वास्थ्य तुम्हारी पहली आवश्यकता है। स्त्रियाँ स्वास्थ्य के प्रति प्रायः उदासीन रहती हैं। जो नारी रूप-रंग, चटक-मटक और शृंगार में काफ़ी पैसे और समय नष्ट करती है वह भी अपने सौन्दर्य के मुख्य स्रोत स्वास्थ्य के प्रति प्रायः लापरवाह होती है। वह बेचारी नहीं जानती कि उसकी समस्त शक्ति, उसका समस्त आकर्षण और रूप उसके स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। इसलिए, सबसे पहले तुम्हें अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना है।

**स्वास्थ्य का महत्व**

साधारणतः स्वास्थ्य का मतलब केवल शारीरिक स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) समझा जाता है। लोग भूलते हैं कि शरीर से भी अधिक मन स्वस्थ रखने की आवश्यकता है। शारीरिक स्वास्थ्य के बिना किसी तरह काम चल भी जाय पर मानसिक स्वास्थ्य के बिना तो जीवन नरक ही है। जीवन की इस पाठशाला में तुम्हें सबसे अधिक ध्यान इसी बात पर देना होगा। यदि तुम कठिन और उत्तेजक परिस्थितियों में शान्त नहीं रह सकती; यदि तुम्हारा मन तुम्हारे काबू में नहीं है; यदि तुम ज़रा-ज़रा-सी बात में रो देती हो; यदि ज़रा-सी घटना तुम्हें खीझ और क्रोध से भर देती है, तो मैं कहूँगा कि दुनिया का समस्त वैभव भी तुम्हें सुखी नहीं कर सकता। तब यदि तुम सुख के सपने देखती हो तो अपने को धोखा देती हो।

**मानसिक स्वास्थ्य के बिना सुख नहीं**

इस नवीन जीवन में मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक नियंत्रण की

आवश्यकता सबसे अधिक है। यहाँ प्रतिदिन ऐसे अवसर उपस्थित होंगे कि उनका बुरा और काला स्वरूप लेकर तुम अपना, अपने पति और अपने कुटुम्बियों का जीवन दुःखमय, अन्धकारमय बना सकती हो। एकबार अपने मन पर से तुम्हारा नियंत्रण हटा; एक बार तुम्हारे अन्दर विष आया कि वह बढ़ता ही जायगा और तुम गिरती जाओगी। खीझोगी और गिरोगी; गिरोगी और खीझोगी। यहाँ तक कि मार्ग के फूल लुप्त हो जायँगे और पाँवों का स्वागत करने के लिए केवल काँटे रह जायँगे।

**फूल और काँटे**

दुनिया में जितना भी दुःख है, वह इसी मानसिक असंयम के कारण है। इसके कारण सुखी और फूलती फलती गृहस्थियाँ नष्ट हो जाती हैं; इसके कारण बहुत दिनों का प्रेम-सम्बन्ध क्षण में टूट जाता है; इसके कारण देखते-देखते, दंगे और युद्ध हो जाते हैं। यह ऐसा विष है जो बुरी तरह मारता है।

यदि तुमने इसे नहीं सीखा तो तुम्हारी सारी शिक्षा व्यर्थ है; वह तुम्हारे किसी काम न आयेगी। मनुष्य का मन अनेक प्रकार से अपने को धोका देता है। जब हम क्रोध करते हैं तो उसका पूरा समर्थन हमें परिस्थितियों से प्राप्त हो जाता है; जब हममें कड़वापन आता है तो उसका कारण हम दूसरों को बतला कर रह जाते हैं। क्रोधी का तर्क और बुद्धि उस समय क्रोध का समर्थन करती है। मैं यह भी मानता हूँ कि तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी झुंझलाहट न्याय-संगत

**तर्क से जीवन की समस्याओं का हल नहीं**

हो सकती है; तुम तर्क से उनका औचित्य सिद्ध कर सकती हो। मैं तर्क न करूँगा; मैं तुमसे विनय करूँगा कि क्षण भर रुक कर अपने हृदय को टटोलो और उत्तर दो कि क्या वहाँ सब कुछ ठीक है? क्या तुम उत्तेजना में कुछ ऐसा काम नहीं कर गई हो जिसे करके तुम्हारा हृदय सुखी नहीं, उल्टे अशान्त हो गया है? यदि यह सत्य है तो न्याय की बातों से क्या लाभ? तर्क जीवन की कठिनाइयाँ बढ़ा सकता है; समस्याएँ पैदा कर सकता है पर उन्हें हल नहीं कर सकता।

जिस युग में हम जी रहे हैं उसमें संघर्ष इतना अधिक है कि जीवन की शक्तियाँ पंगु हो गई हैं और शारीरिक स्वास्थ्य तो बिगड़ा ही है, मानसिक स्वास्थ्य उससे भी अधिक नष्ट हो गया है। मनुष्य इतना तुनुकमिज़ाज हो गया है कि उसमें ग्रहण की, धारणा की, अपने पर क़ाबू रखने की शक्ति का लोप हो गया है। प्रत्येक दिशा और प्रत्येक क्षेत्र में तुम्हें इसके अगणित उदाहरण आज मिलेंगे। परन्तु गृहस्थ जीवन तो इस गुण और इस शिक्षण के अभाव में नरक ही हो गया है। तुम्हारी शक्ति की परीक्षा यहीं है और तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी सदाशयता सब को चुनौती देने वाली परिस्थितियाँ आज तुम्हारे जीवन के सामने हैं।

**आज का युग**

चूँकि गृहस्थ जीवन ब्यौरे का जीवन है इसमें एक समय और एक साथ अनेक बातों पर ध्यान रखना है, इसलिए इसमें विद्वत्ता की अपेक्षा सावधानी, संयम और सुन्दर स्वभाव की आवश्यकता अधिक है। बड़े-बड़े प्रतिभावान व्यक्ति गृहस्थ-जीवन में

असफल हो जाते हैं। बल्कि मैं तो यह मानता हूँ कि श्रेष्ठ प्रतिभा के लिए यह जीवन उपयुक्त ही नहीं है। प्रतिभा एक दिशा में आत्मार्पित हो चुकी होती है; वह एक बिन्दु, एक लक्ष्य में केन्द्रित होती है। इसलिए गृहस्थ-जीवन की अनेकविध—बहुमुखी—माँगों को पूरा कर सकना, प्रायः, उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं होता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम पहले से सावधान रहो, पहले से तैयारी रखो। अभी तक तुमने जिस प्रकार का जीवन बिताया है और जो शिक्षा प्राप्त की है उससे यह जीवन भिन्न प्रकार का है और इसके लिए बहुत-सी बातें तुम्हें सीखनी और ग्रहण करनी होंगी।

**विद्या की अपेक्षा मृदु स्वभाव अधिक आवश्यक**

मेरे एक मित्र हैं। उनकी एक बहिन की दो वर्ष पूर्व शादी हुई। यह लड़की न केवल विदुषी बल्कि सुशीला थी। जीवन में सदा उसने प्यार और दुलार ही पाया था। अच्छी जगह शादी हुई। भरा-पूरा, प्रतिष्ठित कुटुम्ब। हम लोगों ने समझा, लड़कपन की भाँति इसका नारी जीवन भी सुखपूर्ण होगा। इसके पति अच्छे, सदाशय युवक हैं और कल ही मैं इन दोनों से मिलकर लौटा हूँ। पर जो कुछ मैंने देखा और जाना, उससे मेरी वे आशाएँ नष्ट हो गईं। दोनों ने अपने अभाव-अभियोग, अलग-अलग, मेरे सामने रखे और दोष दूसरे पक्ष पर रखा। दोनों का दावा था कि उसने अधिक से अधिक ध्यान दूसरे का रखा। मैं नहीं जानता, किसकी बात में कहाँ तक सत्य था।

**दो अभिशप्त हृदय**

मैं समझता हूँ, दोनों ने सच्ची बातें कहीं पर इन सब बातों के बीच एक बात निश्चित थी कि दोनों ने जिस सुख की आशा की थी, वह पूरी न हुई। उनके स्वप्न टूट गये थे। और जीवन में खीझ और कटुता भर गई थी।

बात यह थी कि पतिदेव की माँ कुछ रूखे स्वभाव की थीं। जीवन की कठिनाइयों ने उन्हें कुछ कटु बना दिया था। पुराने वातावरण में

**चिनगारी**

पली थीं। बहू पर अधिकार और शासन की भावना उनमें प्रधान थी। वैसे वे कुछ बुरी न थीं। पर वे कुछ कहतीं और बहू को बुरा लगता। वह चाहती कि चुप रह जाय, हँस कर सहन करले पर जो उसका हृदय कहता, बुद्धि कहती, वैसा वह न कर पाती थी। मन उसका जवाब देने को बेचैन हो जाता। जीभ दबाती पर दो-एक शब्द निकल ही जाते। वे शब्द जो भावनाओं के पुंज में ऐसे लगते हैं जैसे बारूद में चिनगारी लगती है। ज़रा-सी चिनगारी, और एक भयंकर विस्फोट। सुदर्शन वस्तुएँ गन्दी राख में बदल जाती हैं।

यही यहाँ हुआ। दो शब्द, न चाहते हुए भी जीभ से निकले, और झट दो से चार, चार से सोलह हुए। इसी प्रकार तब तक बढ़ते

**कलह का पहाड़ा**

गये जब तक इर्द गिर्द का सम्पूर्ण जीवन दुःख और हाहाकार से भर नहीं उठा। एक ने कहा—'माँ, आप तो झूठ ही बात-बात में बिगड़ती हैं।' दूसरी बोली—'बाप रे बाप! तुझे तो सीधी बातें भी टेढ़ी लगती हैं। आई और झगड़ने

लगी !' पहली—'मैंने आखिर क्या झगड़ा किया। बिना कुछ बताये ही आप कलंक लगाती हैं।' दूसरी—'नहीं, झगड़ालू तो मैं हूँ। तू तो सीधी-सादी, सावित्री है। लड़के को पाल-पोसकर इतना बड़ा किया। सोचती थी, बहू आयेगी, मेरा भाग्य खुल जायगा। सेवा करेगी। पर यहाँ तो क़िस्मत ही ऐसी है कि सोना छुओ तो मिट्टी हो जाय। जब क़िस्मत ही खोटी है तब तू कल की छोकरी अगर मुझे शिक्षा दे तो आश्चर्य नहीं।' मतलब इस तरह की हज़ार बातें। बात का बतंगड़ बनता गया। जहाँ पहले कभी-कभी मुठभेड़ होती और चिनगारी निकलती थी तहाँ धीरे-धीरे स्वभाव बिगड़ता गया और यह सब दैनिक कार्यक्रम में शामिल हो गया।

**बेचारा पति**

इन झगड़ों में बेचारा पति क्या करता ? क्या वह अपनी माँ को घर से अलग कर देता ? क्या वह बहू से मुँह मोड़ लेता ? ये स्वभावगत दोष थे और तर्कों से इनका निराकरण नहीं हो सकता था। बहुत दिनों तक उसने वही किया जो प्रायः पति करते हैं। स्थिति से भागता रहा; सुनी अनसुनी करता रहा। पर दुर्भाग्य से कोई कब तक भाग सकता है। घर आता तो एक ओर बहू की क्रोध से भरी हुई आँखें उसपर टूटतीं; जिनके साथ कभी आँसुओं का तूफ़ान होता। दूसरी ओर व्यंगों की बौछार उसके मौन का स्वागत करती। बहू और माँ दोनों अपना करम ठोंकतीं। एक सोचती—किसके पाले आ पड़ी। दूसरी कहती—भाग में बहू की गुलामी भी लिखी थी। पत्नी सोचती—कैसे सुन्दर सपनों से भरे लड़क-

पन और किशोरावस्था के वे दिन थे। वह माँ का दुलार, वह बहिनों का प्यार, वह पिता का स्नेह, भाइयों की ममता। वह सहेलियों की चुहल और छेड़खानियाँ! इतनी बातें कभी किसी ने न कहीं होंगी। और वे हैं कि चुप। जब मेरी इज्ज़त नहीं बचा सकते तो क्यों ब्याह लाये? क्या माँ की सेवा के लिए लौंडियाँ नहीं मिल सकती थीं। खायें और पड़ी रहें पर मेरा ही खाना और मुझी पर हुक्म चलाना। हाय, मेरा करम फूट गया। वह सुनते हैं और चुप हैं। क्या मैं मिट्टी का ढेला हूँ। क्या मुझमें जान नहीं। राम-राम ऐसा विद्वान् और ऐसा बोदा। रहें उनके साथ; उनके लड़के हैं। मैं परायी बेटी, मेरा कौन है?" इसी तरह की हज़ार बातें, जिन्होंने मधुमक्खियों की तरह पीछा किया और डंकों से हृदय को छलनी कर डाला।

**बेचारी पत्नी**

माँ सोचती—'वही लड़का है, जो मेरे सामने आँख नहीं उठाता था। सब देखता है और चुप रह जाता है। बहू के आगे माँ को भूल गया। कैसे कैसे कष्ट से मैंने इसे पाला। न दिन देखा, न रात। (बीच-बीच में फूट कर रोना)। आज मेरा कोई आसरा नहीं रहा, तब यह दुर्दशा हो रही है। कभी बहू को नहीं डाँटा, नहीं तो उसकी क्या मजाल थी जो यों जाल फैलाती। सब मिली भगति है। जब बुरे दिन आते हैं, कौन किसका होता है। हे भगवान्, मुझे जल्द उठालो!' इसी तरह के दुःखदायी भाव, जो हमारे विवेक के चारों ओर अपनी बन्दिश यों बाँधते जाते हैं जैसे मकड़ी अपने शिकार को जालों में कसती है—यहाँ तक कि उसे बेबस

**माँ की चिन्ता-धारा**

और निष्प्राण कर डालती है।

जब बेचारा पति इन दो चक्कियों में पिसते-पिसते निरुपाय हो गया तो एक दिन विस्फोट हुआ। माँ से लड़ाई हुई। फिर बहू से उसने कह दिया—"तुमने मेरा जीवन नरक बना दिया। अपने मायके जाओ और मुझे शान्ति के साथ मरने के लिए छोड़ दो।" पर इन झगड़ों के वातावरण में रहते-रहते बहू का स्वभाव इतना खराब हो गया था कि उसने पति से भी कह दिया—"मैं कहीं न जाऊँगी; यहीं रहूँगी। यह मेरा घर है, कौन मुझे यहाँ से दूर कर सकता है?"

**विस्फोट**

और अब तीनों एक दूसरे को कोसते हैं, तड़पते और छटपटाते हैं पर इस झगड़े से दूर नहीं होते। न अपने को शान्ति देते हैं, न दूसरों को। कडुवी मिर्च की तरह, जलाने पर भी, इन बातों में जिह्वा स्वाद लेने लगी है।

ठीक इसके विपरीत एक दूसरा उदाहरण मेरे सामने है। करुणा एक साधारण गृहस्थ माँ-बाप की बेटी। साधारण, हिंदी मिडिल तक शिक्षित। इसका विवाह एक मध्यम श्रेणी के युवक से हुआ। यह युवक एक हाई स्कूल में अध्यापक है। सत्तर रुपये मिलते हैं। माँ दूसरी जगह शादी करना चाहती थी पर कुछ लड़के की इच्छा, कुछ परिस्थितियों के कारण शादी इसी करुणा से हो गई। माँ तो फूली थीं ही, उन्होंने बहू का हार्दिक स्वागत न किया। करुणा ने यहि स्थति

**स्वर्ग की सृष्टि यों की जाती है!**

समझी तो पति से कहा—"मैं पहले माँ की सेवा करके उनका हृदय जीत लूँगी तब दूसरी बातों की ओर ध्यान दूँगी। इस बीच आपकी सेवा में कुछ त्रुटि हो जाय तो आप क्षमा करेंगे। मैं आपकी हूँ अतः आपके साथ तो सदा रहना ही है पर माँ को मेरे कारण असन्तोष हुआ तो घर की शान्ति नष्ट हो जायगी।" इसके बाद वह माँ की ओर विशेष ध्यान देने लगी। माँ ने शुरू में जली-कटी सुनाई। उसने भोजन बनाया तो उसमें ऐब निकाले। पर करुणा ने विनीत भाव से कहा—'माँ, मैं अभी ज़रा-सी बच्ची हूँ। आपके चरणों में रहकर मुझे सीखना है। मुझे कुछ नहीं आता पर आप आज्ञा करती रहेंगी और मुझे सिखाती रहेंगी तो मैं धीरे-धीरे सीख जाऊँगी।' वह जब जो करती, माँ से पहले पूछती—'माँ, यह काम कैसे करूँ?' माँ के पाँव-हाथ दबाती; उनकी आवश्यकताओं और इच्छाओं का ख्याल रखती। थोड़े दिनों में माँ पानी हो गईं। उनकी ज़बान पर सदा बहू के लिए आशीर्वाद और प्रशंसा के शब्द होते। वह बेटे से भी कहतीं—'पूर्वजन्म के पुण्य से तुझे ऐसी लक्ष्मी बहू मिली है। मैं अंधी थी; उसे समझ न सकी थी।' आज यह कुटुम्ब परम सुखी है! मोती की लड़ी की तरह एक में गुँथा हुआ।

इसीलिए कहा जाता है कि जीवन में संस्कारिता की आवश्यकता शिक्षा से अधिक है। विरोधी और उत्तेजक वातावरण में भी मन को शान्त रखना एक ऐसी सिद्धि है जो निरन्तर प्रयत्न से मिलती है। यह न समझो कि कड़ुवी बातों का

**संस्कारिता बनाम शिक्षा**

जवाब देने की उतावली जिह्वा को नियंत्रण में रख कर तुम दूसरों के लिए त्याग कर रही हो। इसमें त्याग की बात उतनी नहीं, जितनी स्वयं तुम्हारे स्वार्थ की बात है। ऐसा करके तुम दूसरों का नहीं, अपना भला कर रही हो, अपना स्वभाव बना रही हो, अपने सुखी गृह का निर्माण कर रही हो। यदि तुमने कटुता का उत्तर कटुता से दिया हो, क्रोध किया हो तो तुम्हें स्पष्ट हो जायगा कि क्रोध का प्रभाव स्वयं तुम्हारे मन और स्वास्थ्य पर कितना अधिक पड़ता है। क्रोध वह विष है जो दूसरों की अपेक्षा प्रयोग करने वाले को पहले मारता है।

मैं कह चुका हूँ, गृहस्थ जीवन ब्यौरे का जीवन है। इसमें चारों ओर दृष्टि रखकर सब के प्रति कर्त्तव्य पालन करते हुए चलना पड़ता है। तुम एक, पर अनेक की माँगें यहाँ हैं फिर बीमारी, दुःख, दुर्घटनाएँ जीवन में आती ही रहती हैं। उनके तीक्ष्ण विष से बचने का एक मात्र उपाय मानसिक स्वास्थ्य और मन पर नियंत्रण है। यदि तुम इनके बीच अपने मन को बलवान और शान्त रखोगी, उत्तेजनाओं के प्रलोभनों से बचोगी तो मैं समझूंगा, तुमने जो पढ़ा है, ठीक पढ़ा है और जीवन की पाठशाला में प्राप्त किये अनुभवों का लाभ उठाने की क्षमता तुम में आ गई है।

दुःख और वेदना का आगमन जीवन में होता है। कठिनाइयाँ जीवन में आती हैं। दुर्दिन आते हैं। परन्तु दुःख सत्य नहीं है, वेदना सत्य नहीं है। इनके बीच भी जीवन पनपता है। मृत्यु और दुःख पर जीवन की विजय ही सत्य है; निराशाओं के बीच आशा सत्य

है। विनाश के बीच भी जीवन अंकुरित होता और बढ़ता है। प्रकृति में देखो, सर्वत्र तुम्हें यह बात दिखाई देगी। बिना सुखी हुए मनुष्य रह नहीं सकता। सुख प्राप्त करना ही मानव का चरम पुरुषार्थ है। आनन्द की साधना ही जीवन का लक्ष्य है। मानता हूँ, बाहर तुम्हारे निकट बीमारियाँ भी आयेंगी, मृत्यु के दंश से तुम्हारा जीवन क्षणभर के लिए मूर्छित हो जायगा, प्रेम की उमंगें निराशा की शुष्क ठंडी हवाओं से शिथिल हो जायँगी; स्नेही जन बिछुड़ जायँगे; अवाञ्छनीय जनों का आगमन होगा पर इन सब के बीच भी मानव जीता है, उगता है, बढ़ता है, इससे कौन इन्कार करेगा? दुःख और वेदना आनन्द की धारा को नियंत्रित करने के लिए हैं; मृत्यु इसलिए है कि जीवन अपने सम्पूर्ण मनोरम रहस्यों को समझे।

**मृत्यु के बीच जीवन पनपता है**

इसलिए जब तुमने नारी का ऊपर से कठोर पर वैसे परम मृदुल जीवन आरम्भ किया है, जब इस विविधतामय, अनेक कर्त्तव्यों और ज़िम्मेदारियों के जीवन में तुमने प्रवेश किया है तब तुम निश्चय करके चलो कि कठिनाइयाँ तुम्हें तोड़ न सकेंगी, निराशाएँ तुम्हारा उत्साह न भंग कर सकेंगी, दुःख तुम्हें पराजित न कर सकेगा, मृत्यु तुम्हारा अन्त न कर सकेगी। तुम जीवन को निराश, दुखी, कण्टकित, दुर्विदग्ध और मूर्च्छित न होने दोगी और एक सुखी जीवन का निर्माण करके रहोगी।

**सुखी होने का दृढ़ निश्चय**

———

*

# पति के प्रति तुम्हारा दान

पति के प्रति स्त्री-हृदय का सद्भाव गृहजीवन की सफलता की कुंजी है। यदि तुम्हारे संस्कार अच्छे हैं तो तुम तुरन्त इस बात को समझ जाओगी कि आत्मदान के बिना नारी जीवन अपूर्ण है। वस्तुतः जीवमात्र की यही प्रवृत्ति है। मानव में इस प्रवृत्ति का अधिक विकास दिखाई पड़ता है। पुरुष या नारी, बच्चा या बूढ़ा कोई बिना प्रेम के रह नहीं सकता। नारी में इस प्रवृत्ति की पूर्णता है। नारी आत्मदान किये बिना रह नहीं सकती। यदि किसी नारी को आत्मदान का अवसर नहीं मिलता तो वह कभी सुखी नहीं हो सकती। उसका जीवन तप्त मरुस्थल के समान अनुताप और अभाव

**आत्मदान नारी की प्रकृति है**

से दग्ध रहता है; अतृप्ति और हाहाकार से भरा हुआ—जीवित शव की भाँति, विधवा न होकर भी चिर-वैधव्य की शिला जिसकी छाती पर रखी हुई है, और जो अपने लिए जीकर भी अपने लिए मरी हुई है, रस-दान और रसग्रहण की शक्तियों से हीन, संतप्त, अपने से खीझी हुई, अतृप्त।

**रिक्ता होकर भी पूर्णा**

हमारे यहाँ नारी को लक्ष्मी और अन्नपूर्णा कहा गया है। उसका दान कभी समाप्त नहीं होता। वह देती है और देती है। इस देने में ही उसकी सार्थकता है। इस देने में ही वह अपने को पाती है। यदि देवता में अर्घ्य-ग्रहण की क्षमता हो तो देवी के हृदय का रस-स्रोत कभी सूखता नहीं। तब वह सब कुछ देकर भी मानों सब कुछ पा जाती है। सब कुछ खोकर भी सब कुछ उसका है। रिक्ता होकर भी वह पूर्णा है; अनुरक्ता होकर भी वह विजयिनी है।

**घोर संघर्षों का जीवन**

जब तुमने जीवन-भर के लिए एक पुरुष को ग्रहण कर लिया है तब उसको अधिक से अधिक निकटता प्राप्त करना, उसके प्रति अधिक से अधिक निजत्व और आदर रखना तुम्हारा पहला कर्त्तव्य है। नारी ने सदैव से पुरुष के विश्राम का ख्याल रखा है। आज जीवन-सघर्ष पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है। जब मैं जीवन-संघर्ष की बात कर रहा हूँ तब मेरा अभिप्राय केवल जीविकोपार्जन से नहीं है। अवश्य ही, अर्थ-संग्रह पर जीवन की अनेक सुविधाएँ निर्भर हैं।

जीविकोपार्जन का प्रश्न दिन-दिन जटिल होता जाता है। हजारों युवक बेकार घूमते हैं। पर जीविकोपार्जन की समस्या के अतिरिक्त भी आज के युवक, आज के पुरुष के ऊपर, अनेक जिम्मेदारियाँ आ गई हैं। आज विरोधी विचार-धाराओं की टक्करों के बीच वह अस्त-व्यस्त और अस्थिर है। समाज जीवन के इस संक्रान्तिकाल में अनेक सामाजिक कुरीतियाँ उसकी शक्ति चूस लेती हैं, अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक बन्धनों में उसका जीवन जकड़ा हुआ है। गरीबी, बेकारी, अधूरी और विकृत शिक्षा, कुसंस्कार, दासता का मारा हुआ, और उससे आशाएँ अनेक; उस पर जिम्मेदारियाँ अगणित। देश को स्वतंत्र करना है तो उसे है, समाज-जीवन का निर्माण करना है तो उसे है; नारी को उसकी वास्तविक, स्वतत्र, पदमर्यादा तक पहुँचाने का काम उसके कन्धों पर है; अनेक सामाजिक कुरीतियों से लड़ना उसे है; स्वतंत्र साहित्य निर्माण की जिम्मेदारी भी प्रधानतः उसकी है। इस प्रकार आज के औसत युवक पर उसकी शक्ति, उसकी तैयारी से अधिक बोझ है। जीवन के इस बोझ को उठाने के कार्य में उसे नारी अपने मृदुल स्पर्श से बहुत सहारा दे सकती है। यदि पति को नारी का हार्दिक सम्मान, उसका प्रेम, उसकी श्रद्धा प्राप्त है तो सहज ही वह अपनी शक्ति से दूना काम कर सकता है। जग-जीवन की यात्रा में नारी पुरुष को बढ़ावा देनेवाली है। अस्थिर, अस्त-व्यस्त, थका हुआ, निराश पुरुष नारी के अत्यन्त निजत्व से भरे प्रेम को पाकर अपनी सम्पूर्ण थकावट भूल जाता है।

उसमें एक नवीन स्फूर्ति और चैतन्य का उद्भव होता है। नया जीवन, नया रक्त उसमें दौड़ने लगता है।

सम्मान और प्रेम सदैव मनुष्य को ऊपर उठाता है। वह मनुष्य में गौरव और उत्तरदायित्व की भावना पैदा करता है। यदि तुम पति को ऊँचा उठाना चाहती हो, यदि तुम चाहती हो कि उसकी उन्नति हो, वे आगे बढ़ें तो तुम अपनी ओर से उन्हें निश्चिन्त कर दो कि तुम्हारी हार्दिक सहानुभूति और सम्मान उन्हें प्राप्त है। उन्हें अनुभव होना चाहिए कि कम से कम एक प्राणी दुनिया में ऐसा अवश्य है जिसके लिए मैं सब से महत्वपूर्ण हूँ, जिसके लिए मेरा जीना, मेरा प्रयत्न करना सार्थक है; जिसकी दृष्टि में मैं ऊँचा हूँ और जिसका सम्मान मुझे प्राप्त है।

**निजत्व और श्रद्धा का दान**

पुरुष में, स्वभावतः, एक प्रकार की अहन्ता है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण नारी के दृष्टिकोण से भिन्न है। नारी ने इतिहास के लम्बे युगों में अपनी सेवा, अपने प्रेम, अपनी मृदुता से पुरुष के अहंकार को धीरे-धीरे मृदुल किया और उसपर विजय प्राप्त की; उद्धत, बाधा-बन्ध-विहीन पुरुष को उसने पालतू बनाया; हिंसक को उसने अहिंसा की दीक्षा दी। आज तक उसका वह कार्य जारी है। जिस अस्त्र से उसने आज तक विजय प्राप्त की है, उसी से वह आज भी, और भविष्य में भी, विजय प्राप्त कर सकेगी। इसलिए पति के अहंकार को

**अहिंसा का शाश्वत मार्ग**

चुनौती देकर, ऐंठकर, तुम सफलता न प्राप्त कर सकोगी। इससे उनका अहंकार और बढ़ेगा; इससे उनके पशुत्व को बल प्राप्त होगा। न केवल उनके लिए बल्कि अपने लिए भी, पति के प्रति तुम्हारी गहरी श्रद्धा आवश्यक है।

कैसा भी पुरुष हो, उसके अन्दर यह भाव अवश्य होता है कि उसने विवाह करके अपनी पत्नी को कृतार्थ कर दिया है। पुरुष घर के झगड़ों से भागने वाला होता है। उसमें यह भावना भी होती है कि स्त्री के लिए ही उसने इतने झगड़े मोल ले रखे हैं। मैं यह नहीं कहता कि उसकी यह भावना, निश्चित रूप से, सत्य या उचित है। मैं यहाँ केवल सामान्य स्वाभाविक भावना की बात बता रहा हूँ। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम अपने दान से पुरुष के इस कुसंस्कार पर विजय प्राप्त करो।

सबसे पहले तुम्हें उनको समझना होगा; वे कैसे हैं; क्या चाहते हैं उनके संस्कार कैसे हैं; उनकी आदतें क्या हैं; उनकी आवश्यकताएँ क्या हैं; किन-किन बातों को वे पसन्द करते हैं, किन्हें नापसन्द करते हैं इसे समझ कर, समझदारी और सावधानी से तुम उनके प्रति व्यवहार करो। यदि तुम उनकी किसी आदत को अच्छा नहीं समझती तो भी तुरन्त उसका विरोध करने की जगह पहले अपनी सहानुभूति, सेवा तथा प्रेम से उनके हृदय पर विजय प्राप्त करो। तब धीरे धीरे बागडोर मोड़ दो और जिस मार्ग पर चला चाहती हो चलाओ।

पति की निन्दा कभी न करो। इससे बढ़कर गृहस्थ जीवन को नष्ट करने वाली बात दूसरी न होगी। जब अवसर मिले, उनकी प्रशंसा करो। तुम जब अच्छी साड़ी पहनती हो और पतिदेव कहते हैं कि 'इस साड़ी में तुम लक्ष्मी मालूम पड़ती हो' या तुम्हारी सहेली कहती हो—'अरी, आज किसका हृदय जीतने की तैयारी है?' तब तुम अन्दर से कैसा खिल उठती हो। जब तुम परिश्रम से भोजन में कोई चीज़ बनाती हो तब यदि तुम्हारी प्रशंसा खाने वाले न करें तो तुम्हारा उत्साह मर जाता है। फिर कल्पना करो, तुम्हें प्रशंसा की जगह निन्दा मिले तो तुम्हारा हृदय कैसा कुण्ठित हो जायगा। यदि खानेवाला कह दे—'क्या तुम्हारे मायके में नमक बहुत सस्ता है,' या 'दाल में पानी है या पानी में दाल है,' अथवा 'क्या बेढंगे कपड़े पहने हैं, पहनने-ओढ़ने की भी तमीज़ चाहिए' तब तुम्हरे मन की क्या अवस्था होती है, फिर चाहे बात सच्ची भी हो। तुम सदा चाहती हो कि पति या सास-ससुर कहें—'तुम बड़ा परिश्रम करती हो, ज़रा अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखो', तब तुम्हें सोचना चाहिए कि पतिदेव को, जिनकी मनोदशा पर संख्या में तुमसे कहीं अधिक व्यक्तियों के सम्पर्क, संघर्ष तथा व्यवहारों की प्रतिक्रिया होती है, जो समाज के अनेक स्वार्थ-सम्बन्धों के शिकार हैं, जिनका स्वास्थ्य जीविकोपार्जन के बोझ से दबा जा रहा है; और नौकरी या अर्थ-साधन के लिए जिन्हें अपने हृदय को दबाकर अनेक अवाञ्छनीय

**सहानुभूति और प्रशंसा की आवश्यकता**

कार्य भी करने पड़ते हैं, तुमसे कहीं अधिक सहानुभूति और प्रशंसा की आवश्यकता है। तुम्हारी ज़रा-सी सहानुभूति उनके हृदय को आनन्द और उत्साह से भर देगी; तुम्हारी प्रशंसा से वे अपना दुःख भूल जायँगे।

**अकेलापन**

जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं जब आदमी करता अच्छा है और समझा बुरा जाता है। कभी-कभी ईमानदार आदमी भी विरोधों के तूफान में पड़कर निराश हो जाता है। दुनिया की इस भीड़ में चलते हुए भी यदि आदमी अत्यन्त अकेलेपन का अनुभव करे तो समझ लो कि सर्वनाश उपस्थित है। कोई अनुभव मनुष्य की आत्मा को इतना अशक्त नहीं बनाता जितना यह कि 'दुनिया में मेरा कोई नहीं है; मैं अकेला हूँ।' इस अनुभव के साथ ही उसका दम टूट जाता है; उत्साह मर जाता है; जीवन में ऐसा पतझड़ आता है, जिसका अन्त नहीं है और जो मृत्यु के साथ ही समाप्त होता है। इस ओर ध्यान न देने के कारण कितनी ही गृहस्थियाँ नरक बन गई हैं, और कितने ही जीवन, सुख के सब साधन होते हुए भी, चौपट हो गये हैं।

**एक दुःखद स्मृति**

जब मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ तब एक अत्यन्त दुःखदायी स्मृति के जागरण से मेरा हृदय काँप रहा है और आँखें भरी आती हैं। मेरे एक अत्यन्त प्रिय मित्र हैं। उनका नाम मैं न लूँगा क्योंकि हज़ारों आदमी उन्हें जानते हैं। उन्होंने देश, समाज और साहित्य की सेवा में जीवन का बहुत

काल बिताया है, और उच्च आदर्शों और प्रेरणाओं के कारण कष्ट भी सहा है। संयोग की बात कहिए कि गृहस्थ-जीवन की विषम परिस्थितियों ने उन्हें निराशा से भर दिया। जब तक विवाह नहीं हुआ था, सब कुछ ठीक था। माँ उन पर जान देती थी, बहिनें परम अनुगत थीं; भाइयों में खूब बनती थी। जितने लोग थे, सब कहते थे—'अच्छा काम कर रहा है, अच्छे काम में लगा है; चार का भला करता है। माना, कमाई की ओर उतना ध्यान नहीं है पर रुपये से ही आदमी की परख थोड़े होती है।'

इस सीधे-सादे, ग़रीब पर सुखी, घर में सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा था। मेरे मित्र कभी विवाह की बात पर ध्यान न देते थे। इस ओर से वह उदासीन-से थे। सोचते थे कि घर के शान्त वातावरण में क्षोभ क्यों पैदा किया जाय?

**जीभ की तेज़ स्त्री**

यह भी सोचते थे कि जिन सार्वजनिक कार्यों में लगा हूँ, उनमें भी कदाचित् बाधा आयेगी। सार्वजनिक जीवन के मोह में उन्होंने योग्य सहधर्मिणी प्राप्त करने के अनेक अवसर खोये। दो के बारे में तो मैं जानता हूँ। मतलब जब तक विवाह न होना था, न हुआ और जब हुआ तो ऐसी लड़की से हुआ जिसमें सब गुण थे पर एक ऐसा दुर्गुण था कि जिसके कारण अमृत विष हो गया। वह स्त्री परिश्रमी थी कष्टसहिष्णु थी पर तेज़ स्वभाव की थी। उसमें वह ग्रहणशीलता न थी, जो प्राणी को विकसित करती है; वह उदारता न थी, जो दूसरों के प्रति विनम्र बनाती है, और वह लोच तथा श्रद्धा न थी जो

विरोधों के बीच प्रेम और सहानुभूति का वातावरण पैदा कर सकती है। वह झुकना न जानती थी, और अपनी बात को सदा तर्कों से सिद्ध करने में तत्पर रहती थी। यह नारी, जो वैसे सदाशय थी, समझ न सकती थी कि मनुष्य का हृदय तर्कों से नहीं जीता जा सकता। उसे अपना पक्ष सिद्ध करने का लोभ जीवन में सुख प्राप्त करने और दूसरों को भी सुखी करने से अधिक था। वह यों बातें करती थी जैसे वकील अदालत में बहस करते या विपक्षी पंचायतों में बोलते हैं। इसका वही परिणाम हुआ जो होना था; स्त्रियों में खटकी; संघर्ष का आरम्भ हुआ; बात पर बात पैदा हुई; मामला बढ़ता गया। जहाँ सब लोग हार्दिक बन्धनों से बँधे हुए थे, खुले हृदय से बातें होती थीं तहाँ दिलों की बस्तियाँ उजड़ गईं; अलग-अलग मुहल्ले बन गये; एक घर में अनेक घर बने। अब लोग एक दूसरे से आँख बचाने लगे, हृदय के बन्धन कट गये और इसके कारण एक-दूसरे के गुण भी दोष हो गये; अच्छी बातें भी बुरी हो गईं। गलतफहमियाँ पैदा हुईं और मित्र ने ज्यों-ज्यों उनको दूर करने का प्रयत्न किया, वे बढ़ती गईं; वे छटपटा-छटपटाकर रह गये; जितना

**सर्वनाश का पथ**

प्रयत्न करते गये; मकड़ी के जाले की तरह परिस्थितियाँ उनको अशक्त बनाती गईं। वे सबके बुरे बन गये। माँ समझती—गृहणी आ गई और अब लड़का वह लड़का नहीं रहा। बहिनें समझतीं, अब हमारा इस घर में क्या है। भाइयों के बीच उदासीनता की दीवार घनी होती गई। स्त्री समझती, परायी बेटी को

लाकर घर में डाल लिया, उसका दुःख कौन समझनेवाला है। धीरे-धीरे वह पति से भी तेवर बदलने लगी; उन्हें भी फटकार देती कि मेरी सब दुर्दशा के कारण तुम हो। जब कोई अस्त्र काम न देता तो वह अपनी माँ को याद कर-करके रोती और अपने फूटे करम को दोष देती। घर, जो मिलने से ही बनता है, बिखरने लगा।

ऐसी आँधी में पड़े एक भावुक पति की मनोदशा की कल्पना करो। और मज़ा यह कि ज्यों-ज्यों संघर्ष बढ़ता गया, परिस्थिति जटिल होती गई, कठिनाइयों ने अपने हाथ-पाँव फैलाये, उनका मानसिक अकेलापन बढ़ता गया। जिन कामों में कोई विरोध उनका दम न तोड़ सकता था, उनके प्रति उदासीनता बढ़ती गई; आन्तरिक स्फूर्तियों और शक्तियों का लोप होता गया। जब सब-कुछ दूर पड़ गया, तब भी उन्होंने बड़ी चेष्टा की कि कम से कम पत्नी उनके साथ हार्दिक सहयोग करे, पर वह बुरी तरह निराश हुए। उलटे वह जहाँ-तहाँ उसकी निन्दा करने लगी। पुष्पित जीवन के बीच श्मशान का उद्भव हुआ। मित्र को एक सर्वव्यापी निराशा-जनित ऐकान्तिकता ने चारों ओर से ग्रस लिया। वह अनुभव करने लगे कि माँ होते हुए भी वह मातृहीन हैं; पत्नी होते भी विधुर हैं। कोई उनका नहीं है—कोई ऐसा नहीं है जिसे हृदय के समस्त संचित बल और विश्वास के साथ वह अपना कह सकें।

जीवन में यह इकलापन उनके लिए, सर्वस्वान्तक हो गया। स्वास्थ्य की खेती को दुर्भाग्य और मानसिक व्यथाओं की टिड्डियों ने चट

कर लिया; अन्तःकरण पंगु हो गया; स्वभाव बिगड़ गया। जीवन के आदर्श और स्वप्न नष्ट हो गये; कल्पनाएँ विस्मृत हो गईं; प्रेरणाएँ मर गईं। बुढ़ापे के सब लक्षण ऐन जवानी में उन पर छा गये हैं, मानो वसन्त के हृदय में पतझड़ पैठ गया हो, अथवा जीवन पर मृत्यु का अन्धकार फैल गया हो। आज वह क्षयग्रस्त, जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं और इस दुर्भाग्य की लम्बी शृंखला ने उनके बच्चों का जीवन भी नष्ट कर दिया है।

**जीवन पर मृत्यु का अँधेरा**

इसीलिए मैंने लिखा है कि जो नारी अपने पति के प्रति दानमयी नहीं है; जो उसके प्रति अपने को निछावर कर देने की भावना से प्रणत नहीं है; जिसके हृदय में सब भावों के ऊपर पति के प्रति परम निजत्व का भाव नहीं है, जो यह अनुभव नहीं करती कि मैं उनसे अलग नहीं हूँ; मेरा सब कुछ उनका है, और उनका सब कुछ मेरा है, जिसमें यह भाव नहीं है कि दुनिया में वही एक ऐसे हैं जो सर्वथा, सर्वांश में मेरे हैं, और टूटकर भी जिनका सम्बन्ध टूटने वाला नहीं है, मिटकर भी जिसका प्रभाव मिटने वाला नहीं है; जो बुरे हैं तो भले हैं तो, जैसे हैं, अपने हैं, तबतक वह गृहस्थ जीवन के निर्माण में ज़रा भी सफलता प्राप्त न कर सकेगी—तब तक वह न जान सकेगी कि गृहस्थ का वह सुख क्या है जो तपस्वियों को भी दुर्लभ है; तब तक एक आन्तरिक निष्फलता के भाव से उसका जीवन स्वयं अस्थिर और अशान्त रहेगा।

यदि पति यह अनुभव करता कि 'दुनिया में कम से कम एक प्राणी ऐसा है जिसे मैं अपना कह सकता हूँ—समझ सकता हूँ तो समझो स्त्री ने गृहस्थ जीवन की पक्की नींव स्थापित कर ली है; निर्भय होकर उस पर अपनी आशाओं के भवन उठा सकती है। ऐसी स्त्री का पति बाधाओं और संघर्षों में भी यौवन की समस्त गर्मी के साथ, जीवन की समस्त स्फूर्ति के साथ बढ़ता जायगा। उसका हृदय, उसका विश्वास, उसका शक्ति-स्रोत उसके साथ है, और ममत्व का अमृत-घट तथा आत्म-निवेदन का स्नेहमय दीपक लिये नारी पथ पर उसे पुकार रही है और वह अपनी जीवन-ज्योति में केन्द्रित चला जा रहा है, चला जा रहा है।

यही दानमयी नारी मानव सभ्यता के आदि काल से समाज की, इतिहास की नायिका है। अवश्य ही लड़ाइयाँ इसने नहीं लड़ीं पर इतिहास के शुष्क शरीर में उसी के प्राण बोलते हैं। अवश्य ही उसने हिंसा को वीरता कह कर नहीं पुकारा पर अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ, मृत्यु को चुनौती देकर, मृत्यु के सामने हँसते हुए उसे अमरता की शिक्षा दी। ऐसी सभ्यता की नींव को अपने जीवनव्यापी वरदान और रक्त से सींचनेवाली नारी ही समाज की वास्तविक शक्ति है। पुरुष की पशुता और रुक्षता से जिसका प्रेमल, मंजुल ममत्व खेलता है और अपनी भक्ति से, अपनी श्रद्धा और सम्मान से जिसने पत्थर को भी देवता बना दिया है—ऐसी नारी !

———

# स्वर्ग के पड़ोस में नरक की खेती

देश के अनेक भागों से बीच-बीच में मुझे ऐसे पत्र मिलते रहते हैं जिनमें विवाहित जीवन से असन्तुष्ट बहिनें तरह-तरह के सवाल पूछती हैं। किसी का पति अब पहले की तरह उस पर प्राण नहीं देता; किसी में स्वयं ही मतिभ्रम है, और समझ नहीं पड़ता कि खीझ और असन्तोष किस बात को लेकर है; कोई सास की शिकायत करती है; किसी को पति का प्रेम प्राप्त है पर परिस्थितियाँ विपरीत हैं; पति बाहर नौकरी करता है या बेकार है, घर के अन्य लोग उस पर रोब गाँठते हैं। कोई अनेक बच्चों के कारण दुखी है; किसी को सन्तान न होने की व्यथा है। जितने पत्र, उतनी ही समस्याएँ हैं।

मैं जानता हूँ कि हज़ारों घरों पर मृत्यु की छाया मँडरा रही है;

जीवन पंगु और अभिशप्त है; शोक और दुःख की बदली छा गई है; हृदय के दीपक बुझ गये हैं और विवेक के प्रकाश का लोप हो गया है। प्रत्येक भीतर ही भीतर घुटता और कराहता है और समझता है कि मैं पीड़ित और शोषित हूँ—मेरे साथ अन्याय हो रहा है; मेरा कोई दोष नहीं। नारी, जीवित शव के समान, अपने में मरी और बुझी हुई, अपने सम्पर्क में आनेवाले को मृत्यु के जबड़ों में घसीट रही है; नर निराश, पंगु, लाचार, शक्ति की दीक्षा के अभाव में अचेत, निश्चेतन, मृत्यु-मुग्ध; जिसका जीवन निराशा से भरा है; जिसके अश्व की बागडोर उसके हाथ से गिर गई है; किधर जा रहा है, कहाँ जा रहा है, पता नहीं। किसी तरह मौत की मंजिल पूरी कर रहा है।

**पथभ्रष्ट नर और नारी**

ये गृह अगणित शवों का झुण्ड अपने अंचल में छिपाये हुए, सुन्दर समाधि-मन्दिरों की भाँति, हर जगह मिलेंगे; अन्तःकरण की पुकार, जीवन की चुनौतियाँ इनकी दीवारों से टकरा कर लौट आती हैं—एक मौन हाहाकार; एक लम्बी, इतनी घनीभूत कि सुनाई न दे, सिसकी, यदा-कदा पैशाचिक अट्टहास; ऐसे अभिशप्त गृह आज हमारे यहाँ कम नहीं हैं।

फिर भी मेरा विश्वास है कि प्रयत्न और विवेक से इन्हीं अभिशप्त गृहों में स्वर्ग की सृष्टि की जा सकती है, मरघट में जीवन का रास हो सकता है, दुःख और व्यथा की रजनी आनन्द और आशा के

प्रभात में बदली जा सकती है।

इसके लिए दृढ़ इच्छाशक्ति, दृढ़ संकल्प चाहिए। केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि दुःख कौन चाहता है? सुख के लिए दृढ़ आत्म-निग्रह की आवश्यकता है; सुख के लिए विवेक की आवश्यकता है; सुख के लिए उदारता की आवश्यकता है। मैं सैकड़ों स्त्रियों को जानता हूँ जो किञ्चित् आत्मनिग्रह और सावधानी, ज़रा-से विवेक से सुखी हो सकती थीं पर आज रोती हैं, छटपटाती हैं, भाग्य को दोष देती हैं। इनसे भी अधिक स्त्रियाँ ऐसी हैं जो आरंभ में पति की अनुरक्ति और प्रेम पाकर भी उसे खो चुकी हैं और तड़पती हैं कि फिर वह मिल जाय और वह है कि मिलने की जगह दूर हुआ जाता है।

माधुरी मेरे एक मित्र की पत्नी है। मित्र परम विनोदी, सुशील व्यक्ति हैं। ऐसा बहुत कम होता है कि उनके मुख पर चिन्ता के बादल हों। माधुरी भली लड़की थी; पति को प्रेम करती थी पर उसके स्वभाव में ईर्ष्या का पुट था। जब पति-देव किसी अन्य स्त्री से हँसते-बोलते तो उसके कलेजे पर छुरी फिर जाती; उसे ऐसा जान पड़ता कि ज़मीन उसके पैरों तले से खिसक रही है। वह कुढ़ कर रह जाती। यदि पतिदेव अपनी विवाहित बहिनों को अधिक उपहार देते या भेजते तो वह समझती कि उसका धन लुटा जा रहा है; यदि वह अपने मन से कोई घरेलू काम कर डालते तो उसे लगता उसके अधिकारों में हस्तक्षेप किया जा रहा है।

माधुरी का उदाहरण

पहले उसने अनुभव किया परन्तु बोली नहीं पर धीरे-धीरे, जड़ जमने पर, यह ईर्ष्या अबोली से बोलने वाली हो गई। उसके मुँह खुले; और ईर्ष्या का मुँह खुलना उस कब्र का खुलना है जिसमें सब समा जायँ। वही हुआ। समस्त गृह इस ईर्ष्या के पेट में समा गया मानों भूकम्प से पृथ्वी फट गई हो और अपने गर्भ में अपने बच्चों को लेकर फिर ऊपर से मिल जाय।

**ईर्ष्या का मुँह खुलना कब्र का मुँह खुलना है**

इस प्रकार के उदाहरण बहुत मिलेंगे। जो स्त्री अपने पति को इस प्रकार पंगु और बन्दी बनाकर रखना चाहती है, वह निश्चित रूप से स्वर्ग से निकट नरक की रचना करने में लगी है। पुरुष किसी बात से उतना नहीं चिढ़ता जितना इस प्रकार की बातों से चिढ़ता है। ऐसे वातावरण में रहना उससे हो नहीं सकता। यह उसके पौरुष को चुनौती है; उसके हृदय पर प्रहार है।

ईर्ष्या और अविश्वास के वातावरण ने हज़ारों घरों को नष्ट कर दिया है। कहा यह जाता है कि पुरुष नारी के प्रति अधिक शंकित, अधिक अविश्वस्त रहता है। यह बात बिल्कुल गलत है। नारी पुरुष के प्रति कहीं अधिक शंकित रहती है। और ऐसी नारी पुरुष का, पति का भला तो क्या करेगी, अपना भी कुछ भला नहीं कर सकती। अपने अविश्वास, अपनी ईर्ष्या से वह जीवन की नींव को हिला देती है और पुरुष को पुनः घर से बाहर भागने, मनोरंजन के लिए दूसरे स्थान ढूँढने के लिए विवश करती है।

जो पुरुष युद्ध में लड़कर सर्वश्रेष्ठ सैनिक पदक प्राप्त करता है; जिसने देश के लिए निरन्तर कष्ट सहा है; जो बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के सामने विचलित नहीं होता, वही पुरुष घर की, आलपिन के समान चुभनेवाली, ज़रा-ज़रा सी बातों से खीझ उठता है। वह चाहता है, पत्नी ऐसी हो कि घर के झगड़ों को आगे न बढ़ाये, बल्कि अपने कौशल से, अपनी सेवा और प्रेम से उन्हें निर्मूल कर दे। वह दुनिया से लोहा ले सकता है पर घर के अविश्वास के वातावरण में एक क्षण नहीं रह सकता।

**स्वर्ग कहीं बाहर नहीं है**

यह कहा जा सकता है कि औसत पुरुष, अपने आचरण से स्वयं अविश्वसनीय बन गया है। वह घरेलू जीवन में नारी की अपेक्षा कहीं कम वफ़ादार रह गया है। इसलिए नारी विवश होकर सतर्क हो गई है। पहले तो यह बात केवल आंशिक सत्य है। युग का प्रभाव नर और नारी दोनों पर पड़ रहा है। पर मैं यह नहीं कहता कि नारी सतर्क न रहे; मैं कहता यह हूँ कि अविश्वास और सतर्कता दो भिन्न वस्तुएँ हैं। मैं यह मानता हूँ, और मेरे इस मानने के पीछे अनुभव की वाणी है, कि विश्वास करके ठगा जाने वाला अविश्वास करके न ठगे जाने वाले से अधिक सुखी होता है। ठगे जाने वाले से ठगने वाला, सदैव, अधिक खोता है। इसलिए यदि तुम विश्वास और श्रद्धा रखती हो तो कुछ घाटे का सौदा नहीं करती। सदा याद रखो, स्वर्ग कहीं बाहर नहीं है; वह तुम्हारे ही हृदय में है। यदि तुम्हारा हृदय

स्वच्छ, निर्मल, विश्वस्त, उदार और मृदु है तो संसार भी तुम्हारे लिए वैसा ही है; तब प्रत्येक पग पर तुम्हें स्वर्ग मिलेगा; तब जहाँ नरक होगा वहाँ भी तुम अपने स्पर्श से उसे स्वर्ग बना दोगी। सन्देह और अविश्वास के वातावरण में जीना ही नरक है; आशा और विश्वास की दुनिया में जीना ही स्वर्ग है।

इसलिए विवाहित नारी की सबसे पहली आवश्यकता पति में गहरी श्रद्धा और विश्वास रखना है। उसे अपने सम्पूर्ण कर्त्तव्यों और ज़िम्मेदारियों का भार उठने का बल इस श्रद्धा से, इसी विश्वास से प्राप्त होता है। बिना इसके नारी खण्डिता है; वह कभी अपने को बल-वान अनुभव नहीं कर सकती; कभी अपने को गृहलक्ष्मी नहीं समझ सकती।

मैं यह नहीं कहता कि जो कुछ जिम्मेदारी है तुम्हारी है और पुरुष को कुछ नहीं करना है; स्पष्टतः पुरुष का कर्त्तव्य अपने आचरण से, अपने व्यवहार से नारी के इस विश्वास को जीवित और शक्तिमान बनाये रखना है पर मैं यहाँ पुरुषों के लिए नहीं लिख रहा हूँ। फिर मेरी गहरी निष्ठा है कि नारी शक्ति और ज्योति का केन्द्र है; पुरुष कैसा भी हो, नारी यदि संकल्प करले तो नरक को स्वर्ग और स्वर्ग को नरक बना सकती है। ऐसी शत-शत नारियाँ हैं जिनके गृह में स्वर्ग के समस्त उपादान उपस्थित हैं पर जो नरक में घिसट रही हैं और दूसरों को भी घसीट रही हैं। पहली बात तो यह

**नारी शक्ति और ज्योति का केन्द्र है**

कि वे सुख चाहती नहीं; मुँह से चाहती हैं, पर हृदय से नहीं। कहती कुछ हैं, करती कुछ हैं। जब उनको हँसकर दो मीठी बातें बोलनी चाहिएँ तो वे कलेजा छेदनेवाली बातें करती हैं; जब उनके मुँह से फूल झड़ने चाहिएँ तब जिह्वा से काँटों की वर्षा होती है। जब पति थका-माँदा घर लौटता है, तब चतुर गृहणी हँसते-हँसते उसका स्वागत करती है; उससे ऐसी बातें करती है जिससे उसका मुरझाया दिल हरा हो जाता है, वह अपनी थकावट भूल जाता है। एक नई आशा और स्फूर्ति से उसका मन भर जाता है।

**सुगृहणी**

एक सुगृहणी पति से ऐसी बातें करती है कि उसे विश्वास हो जाता है कि मेरा दुःख उसका दुःख है, मेरा सुख उसका सुख है। वह हाथ-मुँह धुलाकर पति को जलपान करायेगी; हँसी-खुशी की बातें करेगी। वह पति के चिन्तित मुख को देखकर चिन्ता प्रकट करेगी। पति को व्यथित देख उसका हृदय फटने लगेगा। मन में आयेगा कि कैसे इनके दुःख को बाँट लूँ; प्राण देकर भी इनकी व्यथा हर लूँ।

**कुगृहणी**

कुगृहणी सदा अन्तर में जलती रहती है। वह पति के बाहर से, काम पर से आते ही दुनिया भर की समस्याएँ उसके सामने उपस्थित करती है; तुम्हारी माँ ने हमारे साथ ऐसा किया; ननद से यों झगड़ा हुआ—मैं ऐसे घर में न रहूँगी। महरी आधा काम करती है, आधा छोड़ जाती है; कैसे काम चले। फलाँ को पैसे चाहिये; फलाँ को न्योता नहीं गया; क्या कहेंगे।

मै तो भोग ही रही हूँ पर बाहर तो नाक न कटे। इत्यादि-इत्यादि। जब किसान को वर्षा की आशा हो तब तुषारपात से जो स्थिति होती है वही ऐसी दशा में पति की होती है। वह स्तब्ध रह जाता है। भोजन उसके लिए मिट्टी है, जलपान विष है। घर उसे काटने दौड़ता है। वह घर से घर के बाहर रहने को अधिक उत्सुक रहता है; केन्द्रस्थान से वह दूर भागता है।

यह तुम्हारे बस में है कि पति के लिए एक सुखकर गृह का निर्माण करती हो या घर को गन्दी चालबाजियों, झगड़ों, ईर्ष्या और मनोमालिन्य के वातावरण से पूर्ण कर देती हो। यह सब तुम्हारे काम करने के ढंग, तुम्हारी मनोवृत्ति और विवेक पर निर्भर है। कल्पनाशील लड़कियाँ प्रायः दुखी रहती हैं। वे विवाहित जीवन को भोग-विलास, आराम का जीवन समझे हुए आती हैं, कर्त्तव्य और ज़िम्मेदारियों का ध्यान उन्हें नहीं होता। फिर ऐसी कल्पनाशील लड़कियाँ ज़रा-सी अप्रिय घटना को इतना तूल दे देती हैं कि जीवन दूभर हो जाता है। सास ने कुछ कह दिया कि मायके की याद, माँ के प्यार-दुलार की सैकड़ों आवृत्तियाँ उनके मुँह से निकलती हैं—चाहे मायके में कष्ट ही रहा हो। मेरे मकान के पास एक स्त्री रहती है जो ज़रा भी डाँट पड़ने पर एक

**विकृत मनोवृत्ति**

तूफान खड़ा कर लेती है—'हाँ, परबस हूँ। लड़की ब्याही गई कि पशु की भाँति जैसे चाहो रखो। हाय, माँ तुम कहाँ हो? एक तुम थीं कि कभी मुझे हाथ से काम न करने देती थीं; आज मेरी कैसी हालत है।

परायी लड़की का दर्द कौन समझ सकता है? हे भगवान्, मुझे उठा लो।' फिर वह क्रोध अपने बच्चों पर उतारती है—'अरे, तुम्हीं लोग मुझे खा रहे हो। जब से पेट में आये चैन न लेने दिया। तुम लोग न होते तो मैं भीख माँगती या कहीं चली जाती।' स्पष्ट है कि ऐसी स्त्री, चाहे कितनी ही चेष्टा करे, न स्वयं प्रसन्न रह सकती है, न अपने आस-पास किसी को प्रसन्न रहने दे सकती है। यह मूर्ख स्त्री नहीं समझती कि जब उसके मन में ही यह समा गया है कि मैं परायी लड़की हूँ, परायी हूँ तो कोई शक्ति उसे 'अपनी' नहीं बना सकता। वह सदा परायी रहेगी।

दूसरी बात यह कि वह लड़की, जिसकी माँ ने दुलार में उसे काम और परिश्रम से दूर रखा, गृहस्थ जीवन में असफल होगी। जिस माँ का

**कन्या को परिश्रम से दूर रखने का कुपरिणाम**

वह इतने प्रेम से स्मरण करती है, वही उसकी असली दुश्मन है। उसी ने उसे चौपट किया। उसी ने उसका भविष्य नष्ट कर दिया। जो लड़की या जो माता समझती है कि काम से दूर भागने में सुख है, वह जीवन के सब से बड़े असत्य का पोषण कर रही है। यह सदा याद रखो कि मनुष्य के हृदय की रक्षा के लिए परिश्रम से अधिक उत्तम कोई साधन नहीं है। आलस्य कुविचार का पिता है; वह अगणित पापों का बीज लिये, अत्यन्त लुभावने रूप में हमारे पास आता है और हमारे मोहाविष्ट, दुर्बल क्षणों में हमें नैतिक दृष्टि से पंगु कर देता है। यदि तुम सुख चाहती हो, शान्ति चाहती हो,

निष्पाप और निष्कलंक जीवन बिताना चाहती हो तो सदा काम में लगी रहो। कड़वी बातें और दुर्भावनाएँ ऐसी स्त्री का दम नहीं तोड़ सकतीं। उसके मानस तक वे पहुँचती ही नहीं; ऊपर-ऊपर से छूकर निकल जाती हैं। व्यंग की नोक कुण्ठित हो जाती है; कड़ुवी बातें एक कान से आतीं और दूसरे से निकल जाती हैं। उसके पास इतना समय नहीं कि उन पर सोचे, उनके तार-तार उधेड़े और उनसे अपने दिव्य मानस को ढक ले। यहाँ मायके के नाम पर रोदन नहीं, एक मुस्कुराहट, एक हँसी उन तीखे पैने अस्त्रों के स्वागत के लिए उपस्थित है।

**उल्लासहीन परिश्रम निरर्थक है**

परन्तु तुम्हारा परिश्रम अधूरा है यदि उसके पीछे तुम्हारे जीवन का उल्लास न हो, यदि उसके पीछे एक सुखी गृह के निर्माण की तीव्र इच्छा न हो, यदि उसके पीछे तुम्हारे मन में अपने कार्य के प्रति यह गौरव का भाव न हो कि तुम इस व्यस्त और परिश्रमपूर्ण जीवन में न केवल अपने कर्तव्य का पालन कर रही हो बल्कि समाज की एक बहुत बड़ी सेवा कर रही हो। बैल की भाँति परिश्रम करने का कुछ अर्थ नहीं है। मैंने ऐसी शत-शत स्त्रियों को देखा है जो बैल की तरह रात-दिन काम करती हैं, जो विश्राम नहीं जानतीं, सुख-सुविधा और चटक-मटक, शौकीनी का जिनमें कहीं आभास नहीं है फिर भी वे दुखी हैं। बात यह कि असली चीज़ काम नहीं, काम के पीछे जो भावना है वह है। श्रीमती 'क' सुबह चार बजे उठती हैं। घर की

सफाई के बाद आग जलाती हैं, और जो चार बजे सुबह काम में, लगीं तो दस बजे रात तक दम मारने की फुर्सत नहीं मिलती पर प्रत्येक काम करते हुए वह कुढ़ती रहती हैं; कुछ न कुछ बुदबुदाती रहती हैं। कुछ कह दो कि ज्वालामुखी फूटा। 'रात दिन काम कर रही हूँ, अब क्या करूँ? वह बार-बार कहती हैं—'कौन देखने वाला है, कौन समझने वाला है।' यदि पति कहते हैं—'ज़रा दम ले लो तो कहती है—'आराम तुम लोगों के लिए है। लड़की कहीं आराम करने के लिए पैदा होती है?' वह कराहती जाती है और काम करती जाती है। काम करते समय कोई देखे और डर जाय। मुँह चढ़ा हुआ, आँखें तनी हुई, क्रोध और झनझनाहट के साथ प्रत्येक पग पड़ता है। बर्तन जमीन पर रखती हैं तो लगता है कि आकाश से गिरे हों; बच्चे को बैठाती है तो 'धम्'। लड़के मारे डर के पास नहीं न आते। पास खेलते हैं तो कहती हैं—'बाप रे बाप, इन सब ने आसमान सिर पर उठा रखा है!' बेचारे दूर चले जाते हैं तो यह कि 'भगवान् ने कैसे लड़के दिये कि घर में रहने का नाम नहीं। कौन मरता है, कौन जीता है इसका ख्याल नहीं।' वह बच्चों के साथ दो मीठी बातें कभी न करेंगी पर सदा सिर पीटेंगी कि वे ध्रुव और राम क्यों न हुए।

अवश्य, करती वह सब काम हैं पर प्रत्येक काम करते समय अपने को एक दासी की भाँति अनुभव करती है। इसलिए परिश्रम न केवल उनके मन को बल्कि शरीर को भी नष्ट कर रहा है। काम का बोझ

उनके शरीर में घुन की भाँति लग गया है। वह अपने से सन्तुष्ट नहीं, दूसरों से कैसे हो सकती हैं।

इसके विरुद्ध माधवी को देखता हूँ। बड़े घर की बेटी, बड़े घर में विवाहित; नौकर-चाकर भी हैं पर दिन रात काम में लगी रहती है।

**माधवी को देखो**

सुबह सोते बच्चों को हँसते हुए, चुम्बन लेकर, उठाती है, उनके साथ दो मीठी बातें करती है। वे हँसते उठते हैं। प्रातःकर्म से निबटकर कोई पढ़ रहा है, कोई खेल रहा है। भोजन वह स्वयं बनाती है। अपने व्यस्त जीवन में भी कभी किसी काम से इन्कार करना उसने न जाना। भोजन में लगी है, सास ने कुछ कहा या बुलाया तो मीठे स्वर से कहती है--"माँ, तरकारी भून रही हूँ। आज्ञा हो तो दो मिनट बाद आऊँ?" वह जितना ही काम करती है, उतना ही उसका उल्लास बढ़ता है। कभी उसके मन में यह भाव नहीं आता कि मैं काम करते-करते मरी जा रही हूँ। वह सोचती है--घर मेरा है, काम मेरा है। अपना काम करती हूँ, दूसरे का नहीं। वह सम्पूर्ण गृह में समा गई है। घर उसके व्यक्तित्व, उसके निजत्व, उसके प्रेम का प्रकाश-मात्र होकर रह गया है। मानो उसके प्राण समस्त गृह में व्याप्त हों और गृह ही उसकी देह हो।

कठिनाइयाँ किस के जीवन में नहीं आतीं? दुःख ने किसे अछूता छोड़ा है? संसार में कोई ऐसा भाग्यवान् प्राणी आज तक उत्पन्न नहीं हुआ जिसकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हुई हों। इसलिए जो इसका रोना

रोते हैं, मूर्ख हैं। दुःख सुख लगे रहते हैं; अन्धकार और प्रकाश सब के जीवन में आते हैं पर यह निश्चित रूप से मनुष्य के बस की बात है कि वह दुःख के तीव्र और स्थायी रूप से कसकने वाले दंश से अपने को बचा ले। यह बिल्कुल उसके बस की बात है कि दुःख और वेदना की अँधियारी रजनी में प्रेम और सौहार्द्र की चाँदनी छिटका दे और जीवन का पथ आलोक से भर जाय। यह बिल्कुल उसके बस की बात है कि अपने विवेक से दुःख की बढ़ती हुई छाया की गति रोक दे, अपनी सेवा और गहरी निष्ठा से अविश्वास के बादलों को छिन्न-भिन्न कर दे, अपनी ईमानदारी और सचाई से पाखण्ड और दंभ को बेकार कर दे और अपने हार्दिक प्रेम, उच्चहृदयता, सदाशयता और सहानुभूति से उन काँटों का शीश कोमल कलियों से भर दे जो हमारे हृदय में चुभते हैं तो फिर अपने प्रतिक्षण बढ़नेवाले विष से हमें बेकार ही कर देते हैं। किसी महात्मा का यह वाक्य मैं कभी नहीं भूलता—'ऐ मूर्ख, जिस स्वर्ग की खोज में तू मारा-मारा फिर रहा है वह तो तेरे हृदय में है।' जब मैं तुमसे कहता हूँ कि स्वर्ग नरक तुम्हारे अपने हृदय की बातें हैं तो इसमें ज़रा भी असत्य नहीं। जो मनुष्य के अन्तर में होता है, वही उसे बाहर दिखाई देता है। समस्त बाह्य जगत् अन्तर्जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र है। यदि तुम्हारा हृदय अन्दर से प्रकाशित है तो अन्धकार की चादर चाहे कितनी काली हो प्रकाश की किरणें उसमें से फूटे बिना नहीं रह सकतीं, यदि तुम अन्दर से जीवित हो, जीवन से भरी हुई हो

**नरक के चीत्कार से बचो !**

तो मृत्यु की मूर्च्छा तुम्हारे निकट न आयेगी; यदि तुम्हारे अन्तर में उल्लास है, तुम प्रेम से भरी हो, उल्लास से उमगी-उमगी अब उमड़ी तब उमड़ी यों हो रही हो तो नरक का भयानक चीत्कार तुम्हें छू न सकेगा।

मैंने ऐसी सैकड़ों स्त्रियों को देखा है जो मृत्यु के बीच जीवन का, दुःख के बीच आनन्द का, कांटों के बीच फूलों का विकास कर रही हैं। जीवन उन्हीं से जीवन है; प्रेम उन्हीं के कारण अमृत है। पर समाज में, आज, शत-शत नारियाँ ऐसी भी हैं कि जिधर क़दम रख दें लहलहाते फूल सूखकर झड़ जायँ जिधर देख लें बसन्त पर पतझड़ छा जाय--डाइन की भाँति! जीवन और आनन्द उनसे डर कर भागते हैं। ऐसी स्त्रियाँ स्वर्ग के पड़ोस में नरक की खेती कर रही हैं। उनके प्रत्येक पग में विनाश का ताण्डव है; उनकी प्रत्येक बात में मृत्यु के भयानक डंक के दर्शन होते हैं; उनके प्रत्येक कार्य से अमंगल की सूचना मिलती है।

**काँटों के बीच फूल उगाने की कला**

जब तुम्हारे मंजुल नयनों के पीछे वह प्रकाश झाँकता है जो बाहर आवे तो जीवन को ज्योतिर्मय कर दे तब क्या तुम उन कटु कटाक्षों का प्रयोग करोगी जो जीवन के दीपक का सब रस--स्नेह--चूस लेते हैं; जब तुम्हारे हृदय में प्रेम की बंशी बज रही है, वह बंशी जिसमें समस्त प्राण, समस्त जीवन ध्वनित है और जिसे सुनकर नारी ने सहज

**तुम्हारे मानस में खेलता स्वर्ग**

भाव से आत्मदान किया और उसी दान में अपने गौरव का दर्शन किया है तब क्या तुम उस कर्कश स्वर का प्रयोग करोगी जिसे सुनकर मानव पिशाच हो उठता है? स्वर्ग तुम में है, शक्ति का स्रोत तुम में है। तुम में वह सब कुछ है जिसको पाने के लिए मानव की आराधना और साधना है। तब क्या तुम अपने कर्तव्य की उच्च भूमिका से नीचे उतर कर स्वर्ग के निकट नरक की सृष्टि करोगी? अपने को देखो, अपने हृदय के नीचे पैठो; भूल जाओ कि तुम दासी हो, भूल जाओ कि दुःख तुम्हारे लिए है, कष्ट तुम्हारे लिए है। दृढ़ विश्वास रखो, आनन्द तुम्हारा आवाहन कर रहा है; और स्वर्ग तुम्हारे ही मानस में खेल रहा है। साहस करो; मिथ्या विश्वास और भ्रम को तोड़ दो; सुखी होने का संकल्प करो और नरक की इस खेती को सूख जाने दो। इनके निकट ही सुख और आनन्द के सोते तुम्हारा आवाहन कर रहे हैं जिनमें नहाकर तुम्हारी सम्पूर्ण थकावट दूर हो जायगी।

---

# मंगलमयी

**वह मनोरमा !**

मुझे याद है कि मनोरमा जब पढ़ती थी तो कोई उससे खुश न था। पढ़ने-लिखने में वह बहुत अच्छी न थी। पढ़ने और परीक्षा में पास होने की अपेक्षा नई सहेलियाँ बनाने, मित्रता जोड़ने का उसे शौक था। किसी का कोई काम होता वह कर देती। कोई सहेली बीमार पड़ती तो उसकी सेवा में सब कुछ भूल जाती। जहाँ कहीं रोता बच्चा देखती गोद में उठा लेती और चुमकारती। घर में होती तो तरह-तरह की नक़ल करके सब को हँसा देती। अध्यापिकाओं की शिकायत थी कि वह पढ़ती नहीं है; पिता का कहना था कि माँ ने उसे बिगाड़ रखा है, और वह व्यर्थ उसकी शिक्षा में इतना खर्च कर रहे हैं। कभी डाँटते-फटकारते, कभी

उपदेश करते। कहते—'ज़रा शकुन्तला को देख। कैसे क़ायदे से रहती है; कपड़े-लत्ते टीमटाम से दुरुस्त। पढ़ने में सब से आगे। दो साल से सदा प्रथम हो रही है। भाषण-प्रतियोगिता का 'कप' उसने विजय किया है। और एक तू है कि थर्ड-डिवीजन—तीसरे दर्जे—में किसी तरह आ गई है। व्यर्थ के कामों में लगी रहती है—जिनसे तुझे मतलब नहीं, सरोकार नहीं।'

पर शकुन्तला, शकुन्तला रही और मनोरमा, मनोरमा ही रही! दोनों अपने-अपने ढंग पर चलती रहीं। आज दोनों का विवाह हो चुका है। मनोरमा की गोद में एक बच्चा भी है। विवाह के पहले जो पिता कहते थे कि इसका कैसे पार पड़ेगा, आज सुखी और सन्तुष्ट हैं। दो वर्ष में मनोरमा ने न केवल अपने पति के हृदय पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है बल्कि ससुराल को, पतिगृह को, स्वर्गीय आनन्द से पूर्ण कर दिया है। उसके आने के पहले जो गृह सूना-सूना सा लगता था, आज मानो सजीव हो उठा है। गृह का कोना-कोना उसके हास्य से मुखरित है। घर की बड़ी-बूढ़ियाँ उसे पाकर मानों अन्धे की लाठी पा गई है; मृत्यु के निकट होकर भी जीवन स्वाद से भर उठा है। छोटे बच्चे उसे पाकर निहाल हैं; मजाल है कि वह हो और कहीं किसी बच्चे का रोना सुनाई दे! पति को प्रेम और सेवा का आश्वासन प्राप्त है। गृह व्यवस्थित है। किसी को यह अनुभव नहीं होता कि उस पर अधिक बोझ है। क्योंकि मनोरमा है कि सब का बोझ उठाने को सदा तैयार है; वह यहाँ है, वह वहाँ है, वह मानो एक होकर भी

अनेक है, और एक जगह होकर भी सब जगह है। कोई उससे अलग होने, दूर रहने की कल्पना नहीं कर सकता।

**और शकुन्तला**

इसके विरुद्ध शकुन्तला ने पढ़ने में काफ़ी नामवरी पाई। बी० ए० आनर्स में यूनिवर्सिटी भर में प्रथम रही। बहुत अच्छी जगह उसकी शादी हुई। किन्तु पूरा साल भी बीतने न पाया था कि पति-गृह के टुकड़े-टुकड़े हो गये। ससुर माथा पीटकर रह गये; सास लम्बी आह करती और आँसू बहाती और पति बेचारा, जीवन-संघर्ष में इस आकस्मिक वज्रपात से किंकर्तव्य-विमूढ़, क्या करता? पर इतना अवश्य सोचता कि सीधे-सादे आनन्दी जीवन में यह क्या से क्या हो गया। और स्वयं शकुन्तला! अपने कालेज के दिनों की याद करती। वे सफलताएँ, वे प्रशंसाएँ, वह सहपाठी सहेलियों की करतल ध्वनि, वह हँसी, वह प्रोफेसरों का बढ़ावा! सब देकर, सब भूलकर यह जीवन ख़रीदा, और आज सब कुछ नष्ट है। 'हुँः! कोई मेरी परवा न करे तो मैं क्यों किसी की परवा करूँ!'

ये दो चित्र स्वयं ही अपनी कहानी कहते और अपने नैतिक आधार स्पष्ट कर देते हैं। मनोरमा का स्वभाव, विवाहित जीवन में, उसके काम आया; शकुन्तला की पढ़ाई कुछ काम न आई, उलटे उसने एक अस्वाभाविक अहंकार को जन्म दिया और समस्या सुलझने की जगह और भी जटिल हो गई। बात यह है कि विवाहित जीवन का अपना विज्ञान है; इसकी कला ही अलग है।

अकसर मैंने स्त्रियों को, अपने बीच--जहाँ आशा की जाती है कि कोई पुरुष सुनता नहीं है—यह कहते सुना है--'बहिन, सब पुरुष एक से होते हैं। बड़े बेपीर; अपना मतलब निकालने में चतुर। उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि कब क्या करेंगे--ऊँट किस करवट बैठेगा।' मुझे प्रसन्नता होती यदि मैं इसका समर्थन कर सकता कि पुरुष स्त्रियों से अधिक चतुर होते हैं। कैसा ही पढ़ा-लिखा पुरुष हो, गृहस्थ जीवन में, व्यवहार में, वह स्त्री के आगे बच्चा है। स्त्रियाँ जब काम निकालना चाहती हैं तो पुरुष में क्या शक्ति है कि उनकी इच्छा-पूर्ति में बाधक बनें। कुछ हँसकर, कुछ रोकर, कुछ गृह को स्वर्ग बनाकर, कुछ नरक की सीमा तक जाकर अपना हट पूरा कर ही लेती हैं। हाँ, कहती सदा यही रहती हैं कि लड़कियाँ परबस हैं।

× ×

पर बातें अप्रासंगिक होती जा रही हैं। मैं कहना यह चाहता था कि ज़रा-सी सावधानी और चतुराई, ज़रा से आत्म-नियंत्रण से स्त्रियाँ मंगलमयी बन सकती हैं; जरा सी असावधानी से वे पिशाची हो जाती हैं। अवश्य ही संसार के व्यस्त जीवन में मस्तिष्क का, ज्ञान का मूल्य कम नहीं है पर सहानभूति तथा प्रेम का मूल्य उससे कहीं अधिक है। इसीलिए जो स्त्री प्रेम कर सकती है, गृह में मधुरता का वातावरण पैदा कर सकती है, वह उस स्त्री से, जिसका मस्तिष्क तो बढ़ गया है पर हृदय बहुत छोटा हो गया है, कहीं अधिक सफल और सुखी होती

**बड़ा मस्तिष्क पर छोटा हृदय**

'। जीवन स्वयं एक समझौता, एक सामञ्जस्य है। इसलिए जो समें जुड़कर रह सकता है, जो जोड़ सकता है, वह जीवन का स्वाद ी अधिक ले सकता है। इसके विरुद्ध जिसमें विभेद है, जो तोड़ता और अलग करता है, उसको जीवन का आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता योंकि उसमें जीवन की विशिष्टता भी नहीं है।

गृहस्थ जीवन का समस्त सुख स्त्री-पुरुष के गहरे सहयोग पर नेर्भर है। इस सहयोग की नींव जीवन में जितनी दूर तक गहरी पैठी ोगी, दोनों उतना ही सुखी होंगे। जहाँ यह आन्तरिक या हार्दिक हयोग प्राप्त है वहाँ कठिनाइयाँ आती हैं और चली जाती हैं; ीवन को दुखी करने की जगह उसे ओज और उत्साह से भर देती हैं। ीवन बसन्त की तरह न केवल ऊपर से बल्कि अन्दर से भी उमड़ा-उमड़ा सा और अपने प्रति सार्थक होता है। मृत्यु का दंश और ंधकार का आवरण यहाँ व्यर्थ है। खिले पुष्प की भाँति जीवन पराग ो भर गया है।

इसलिए उस स्त्री के लिए, जिसे विवाद और दलील की अपेक्षा, र्तव्य और सुख का बोध अधिक है, मेरी सलाह है कि चाहे किसी ी कीमत पर उसे सब से पहले पति का आन्तरिक सहयोग प्राप्त रना चाहिए। उसे पति के जीवन में प्रवेश करना चाहिए—पति के लेए अपने को अनिवार्य बना लेना चाहिए। यही वह वस्तु है जो ीवन को प्रकाश से भर देती है; और जिसकी एक मृदुल थपकी से म्पूर्ण थकावट दूर हो जाती है।

जब तुमको पति के प्रति इस आन्तरिक एकता की अनुभूति होगी तो तुम स्वयं उनके कार्यों में रस लोगी; उनके प्रति सहानुभूति से तुम्हारा हृदय द्रवित रहेगा। कभी तुम्हारी जिह्वा पर उनकी निन्दा के शब्द न आयेंगे। एक अमेरिकन महिला ने लिखा है कि "पति स्त्री के लिए सर्वदा अच्छा है।" इसका तात्पर्य यह नहीं कि पति में कोई दुर्गुण नहीं होते या वह देवता है; इसका तात्पर्य यही है कि तुम्हें सदा उसके विषय में अच्छी बातें सोचनी चाहिएँ; उसके शुभ पक्ष को लेना चाहिए। वह बुरा है तो भला है तो तुम्हारा है। जो चीज़ें तुम्हें जीवन में मिली हैं उनका सर्वोत्तम उपयोग करना इसकी अपेक्षा कहीं अच्छा है कि उनसे अच्छी पर अप्राप्त वस्तुओं की चिन्ता में समय बिताओ। इससे तुम अधिक सुखी होगी।

जो स्त्री गृह-जीवन में सफल होना चाहती है तथा जिसके हृदय में पति के लिए सच्ची सहानुभूति है वह सदा चेष्टा करेगी कि घर पति के लिए तथा उसके लिए भी, सच्चा सुख-सदन हो, जहाँ जीवन के यात्रा-पथ की थकावट मिट सके और दो घड़ी एकत्र रहकर दोनों अपनी चिन्ताओं को घटा सकें; जहाँ प्रवेश करते हुए प्रसन्नता और उमंग से हृदय भरा हो। जब पति घर आवे मुस्कराती हुई उसका स्वागत करो। ऐसी बातें करो जिससे उसके हृदय की कली खिल जाय। दो मीठी बातें, प्रसन्नता और सान्त्वना तथा गहरी सहानुभूति से भरे दो शब्द, और सफलता तुम्हारी है; स्वर्ग तुम्हारा है।

यह बात भी याद रखने की है कि तुम्हारा पति देवता नहीं है!

संसार की कठिनाइयाँ उसे अस्थिर कर सकती हैं; संघर्ष के वातावरण में उसका भी दम घुटने लग सकता है। तुम्हारी तरह तुम्हारे पति में भी गुण और दुर्गुण दोनों हैं। उससे

**पति भी मनुष्य है**

भी गलतियाँ हो सकती हैं। जीवन में प्रायः ऐसा होता है कि जब हम कोई गलती करते हैं तब यह मानने को तैयार नहीं होते कि हम गलती कर रहे हैं। माना पति ने उत्तेजना के क्षणों में या अस्वाभाविक मनोदशा में कोई ऐसी बात कह दी जो अनुचित है या जिसके विषय में तुम निर्दोष हो। तर्क तुम्हारे पक्ष में है; औचित्य तुम्हारे पक्ष में है; न्याय तुम्हारे पक्ष में है। तुम यदि पति की अनुचित बातों का प्रतिवाद करो तो कुछ अनुचित न होगा। पर जीवन केवल तर्कों के बल पर नहीं चलता; वह तर्क और सामान्य आचार से ऊपर उठकर चलता है। गृहस्थ जीवन में न्याय और औचित्य तुम्हारे पक्ष में होते हुए भी उसे व्यक्त करने की कला वकीलों की बहस करने की कला से भिन्न है। यदि पति ने कोई उत्तेजनापूर्ण बात कह दी और तुमने भी उत्तेजनापूर्ण शब्दों में उसका उत्तर दिया तो उत्तेजना पर विजय तो तुम क्या पा सकोगी, उलटे स्वयं उसका शिकार हो जाओगी। उत्तेजना का उत्तर उत्तेजना नहीं है। कभी विष के घूँट पी जाने से ही अमृत की सृष्टि हो जाती है। दो घंटे या दो दिन बाद, शान्ति और सहानुभूति के क्षणों में, यदि तुम पतिदेव का ध्यान उनकी अनुचित बातों की ओर आकर्षित करोगी तो वह लज्जित होंगे।

आज स्त्रियाँ पहले से अधिक शिक्षित हैं। पुरुषों में तो तेज़ी से

शिक्षा का प्रचार हो रहा है। हर साल हज़ारों शिक्षित लड़कियों-लड़कों के विवाह होते हैं पर बहुत ही कम का जीवन सुखी होता है। घर घर में अँधेरा है; घर घर में कराह और व्यथा है। शत-शत अभिशप्त गृह, अपनी पीड़ा और व्यथा की मौन पर लम्बी कथाएँ, समाज-जीवन की विशृंखलता और अव्यवस्था के रूप में, कह रहे हैं।

**बढ़ती हुई सभ्यता के बीच अँधेरा !**

क्या इसका कारण यह है कि ये लड़कियाँ या ये लड़के मानवी गुणों से एक दम शून्य हैं? क्या इसका कारण यह है कि उनमें एक दूसरे के प्रति सहानुभूति अथवा ईमानदारी का नितान्त अभाव है या क्या वे सुखी होना नहीं चाहते? ऐसी कोई बात नहीं है। उनमें सहानुभूति भी है, वे सुखी करना और सुखी होना भी चाहते हैं पर उनको उसका कौशल, उसकी कला का ज्ञान नहीं है। किस स्थान पर किस बात का कैसा प्रयोग करना चाहिए, इसका उन्हें पता नहीं। गृहस्थ जीवन एक क्रियात्मक, प्रयोगात्मक विज्ञान है। सिद्धान्तों का ज्ञान यहाँ बस नहीं; उन नियमों और सिद्धान्तों के उचित उपयोग का ज्ञान ही, यहाँ, आवश्यक है। अपने जीवन में बहुसंख्यक युवक-युवतियों के सम्पर्क में मैं आया हूँ। उनको प्रायः इस बात से आश्चर्य होता है कि निर्दोष और कर्त्तव्यपरायण होते हुए भी क्यों वे अपने जीवन-साथी के साथ सुखी नहीं हैं या क्यों उनका जीवन-साथी उनके साथ सुखी नहीं है। मैं असामान्य उदाहरणों को छोड़ देता हूँ। एक सामान्य दम्पती के हृदय में अवश्य एक-दूसरे के प्रति एक प्राकृतिक आकर्षण होता है; उनमें

परस्पर एक झुकाव, एक सहानुभूति, एक निजत्व होता है। दोनों के शरीर के अन्दर के विशिष्ट तत्त्व—'हार्मोन्स'—स्वयं अपनी अभिव्यक्ति चाहते हैं। उनमें स्वतः मिलन की प्रेरणा होती है। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्राकृतिक आकर्षणशक्ति, संयोग की ओर ले जाने वाली इस प्राकृतिक प्रेरणा और मनोधारा का हम समय पर और कौशलपूर्वक उचित उपयोग करें। शरीर आत्मा का विरोधी तत्त्व नहीं, वह आत्मा का अधिष्ठान है। उसके संयोग से आत्मा अपने को प्रकाशित करती है। इसी प्रकार शारीरिक आकर्षण, अधिक गहरे आकर्षण का बाह्य रूप है। यदि हम जीवन की रचना और व्यवस्था में इसका ठीक उपयोग कर लेंगे तो इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सृष्टि कर सकेंगे।

संसार में बहुत-सा दुःख और कष्ट केवल इसलिए पैदा होता है कि जिस समय जो काम करना चाहिए वह हम नहीं करते या जिस स्थान पर जो चीज़ होनी चाहिए, नहीं होती।

**स्थानभ्रष्टता दुःखों का मूल है**

स्थानभ्रष्टता ही दुःखों का कारण है, वही असौन्दर्य का भी कारण है। यदि हम यह जान लें कि व्यवस्था में ही सौन्दर्य और सुख है तो जीवन का एक बड़ा मंत्र हमें ज्ञात हो गया। तुम देखती हो, चित्रकार अन्धकार की पृष्ठभूमि पर कैसे मनोमोहक चित्र बनाता है। वही रंग बिखरे होते हैं तो कहीं जीवन या सृष्टि के दर्शन नहीं होते। उन्हीं के उपयुक्त सामञ्जस्य से जीवन बोलने लगता है; एक नई सृष्टि होती है। रंगों का बिखरना

ही मृत्यु, उसका संयोजन ही जीवन या सृष्टि है।

गुलदस्ते से सीखो

तुम्हारा माली तुम्हारे अध्ययन-कक्ष में या बैठने के कमरे में प्रायः पुष्पगुच्छ—गुलदस्ता—लगा जाता है! यदि तुम्हारे घर में ऐसी स्थिति नहीं है तो भी तुमने माली का बना गुलदस्ता देखा ही होगा। कभी-कभी तुम्हीं अपने जूड़े में अर्धविकसित सतरंगी कलियाँ गूँथ लेती होगी। गुलदस्ता, जिसमें वे पत्ते भी हैं जिन्हें कभी तुमने सौन्दर्य के लिए न सराहा होगा, कितना सुन्दर लगता है। पत्तों के बीच वह गुलाब मानो बोल देगा और जुही की कलियाँ मानो हँसना ही चाहती हैं। कमल है कि कोई नववधू अपने प्रियतम के ध्यान में जैसे आँखें मूँद रही हो। यह सौन्दर्य-सृष्टि केवल व्यवस्था के कारण है। विविधता में जब एक-रूपता के दर्शन होते हैं तभी सौन्दर्य और सत्य की अभिव्यक्ति और अनुभूति होती है। जीवन में जो विविधता है, वह डरने की चीज़ नहीं है; उलटे उपयोगी है। इसलिए कुटुम्ब में जो अनेक प्रकार के लोग होते हैं; जो अनेक प्रकार की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं उनसे भीत वही नारी होगी जिसने जीवन का ठीक स्वरूप न जाना, न समझा हो। माना, इस विविधता से तुम्हारे कार्य बढ़ जायँगे, तुम्हारी चिन्ताएँ बढ़ जायँगी पर यदि तुम चतुर हो तो उस विविधता का भी समुचित उपयोग कर लोगी; उनसे एक सुन्दर सृष्टि कर लोगी। जीवन में यही चीज़ सब से कठिन मालूम होती है : विविध सम्बन्धों का सामञ्जस्य। पर थोड़ी उदारता, थोड़ा कौशल,

थोड़ी सहानुभूति और उच्च मानस-भूमिका से ये कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और जीवन का पथ सरल एवं सुखद हो जाता है।

मैंने ऐसी स्त्रियों को देखा है जिन्होंने अपने व्यवहार और शील से अत्यन्त कट्टर और क्रोधी ससुरों को पानी कर दिया है और प्रतिकूल तथा कर्कशा सासों का आशीर्वाद एवं स्नेह प्राप्त किया है। मनुष्य के आचार—विचार जैसे भी हों, उसके हृदय में प्रेम का गुप्त स्रोत अवश्य होता है। यदि तुम उसके हृदय में प्रवेश करके उसका ढक्कन खोल दो तो फिर जहाँ कटुता और रूक्षता दिखाई देती थी तहाँ तुम्हें मृदुता और सरसता के दर्शन होने लगेंगे। जहाँ तक घर के बड़े-बूढ़ों का सवाल है वे इतना ही चाहते हैं कि नई पीढ़ी उनका सम्मान करे। इसलिए थोड़े से विनय और सेवा, ज़रा से कौशल से तुम सहज ही उनका हृदय जीत सकती हो, कम से कम उन्हें अनुकूल कर ले सकती हो।

वह नारी धन्य है, जो पति-प्राणा होते हुए भी गृह के सब लोगों का ख्याल रखती है। उसे पति का प्रेम, सास-ससुर का अशीर्वाद, जेठानियों का अनुराग, देवरों का स्नेह तथा नौकरों की निष्ठा सब प्राप्त है। जैसे शरीर में हृदय है तैसे ही समस्त गृह में उसकी प्रति-ध्वनि है। वह सब में व्याप्त है। उस पर निरन्तर कल्याण की वर्षा होती है। वह गृह का दीपक है; वह कल्याणी है; वह मंगलमयी है।

———

# प्रेम की असीम शक्तियाँ

अभी चन्द दिनों की बात है। मैं एक आवश्यक कार्य से मध्य-प्रान्त की ओर गया हुआ था। बम्बई मेल, जानवरों-से भरे यात्रियों को लिये हुए, दानव की भाँति दौड़ रहा था और अपने दुःख और प्रवञ्चना में यात्री जीवन के अनुभव, संस्मरण तथा स्मृतियाँ उलीच रहे थे—कुछ नमक-मिर्च या अतिशयोक्ति का पुट इन सब बातों में था। मैं एक दर्शक और श्रोता की भाँति सब का आनन्द ले रहा था। बहुत सी बातें कही गईं। पर इनमें से एक बात, जिसने सब सुनने वालों को सब से ज़्यादा चकित किया, यह थी कि भूपाल के पास एक पहाड़ी पर कोई महात्मा रहते हैं जिनके साथ शेर सेवक की भाँति रहता है। फिर और भी बहुतेरी बातें कही गईं जिनका कोई ओर-छोर न था।

मुझे उनसे कोई मतलब भी नहीं और न उनके कारण असली बात में कोई अन्तर पड़ता है। मुख्य बात इतनी है कि एक महात्मा हैं जिनके पास शेर निरीह बनकर रहता है, अपनी हिंसक वृत्ति को भूल गया है। जो लोग योग की जानकारी रखते हैं अथवा योगियों के सम्पर्क में आये हैं वे सहज ही जानते हैं कि ये साधारण घटनाएँ हैं। स्वामी कृष्णानंद को शेरों के साथ बहुत से लोगों ने देखा होगा। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी जीवनी में भी एक ऐसे महात्मा का वर्णन लिखा है जिनके पास नित्य रात को एक सिंह आता था और चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करता था। किसी समय उसे घायल देख उस महात्मा ने उसकी सेवा की थी।

**प्रेम में भूला शेर**

इन घटनाओं अथवा इसी प्रकार की अन्य घटनाओं में जो काम की बात है वह इतनी-सी है कि प्रेम की शक्ति अमोघ है। यह हिंसा और वैर पर प्रेम की विजय की घोषणा है : इस स्वार्थ की दुनिया में चैलेंज के समान कि पशुता चाहे जितनी शक्तिमान हो प्रेम उसके हृदय में पैठकर उसे पराजित कर सकता है।

कदाचित् संसार के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ इन बातों की हँसी उड़ायें; उनकी शक्ति तभी तक है जब तक मानव प्रेम की अद्भुत शक्ति को भूला हुआ है; जब तक मानव-हृदय का देवत्व दबा हुआ है और उस पर पशुता की शक्तियाँ प्रबल हैं। परन्तु मानव-सभ्यता ने आज तक जो भी प्रगति की है उसका आधार प्रेम ही है। इसी से मनुष्य का जीवन सम्भव हो सका है; इसी से वह सामाजिक आधारों और मूल्यों

को अपना सका है।

समस्त मानव-जीवन इसी प्रेम की शक्ति पर आश्रित है। गृहस्थ जीवन तो इसके बिना किसी प्रकार चल नहीं सकता। वह कौन-सा स्वप्न है जिसके लिए लड़की अपने पिता का घर और माता की गोद छोड़ देती है? वह किसका बल है जो उसे जीवन के, कठिनाइयों से भरे, मार्ग पर आगे बढ़ाता है? वह कौन-सी शक्ति है जिसे लेकर वह एक अज्ञात, अपरिचित घर में प्रवेश करती है? किस जादू से वह नवीन जीवन को जन्म देने की भयानक वेदनाओं को भूल जाती है?

क्या इसका स्पष्ट उत्तर प्रेम नहीं?

इसीलिए मैं कहता हूँ कि यद्यपि जीवन के सुख धन-धाम तथा बाह्य सुविधाओं पर भी निर्भर करते हैं किन्तु उसका मूल स्रोत तुम्हारे हृदय का प्रेम ही है। जिस लड़की का हृदय जितना ही प्रेमल होगा, जिसमें प्रेम जितना ही गहरा होगा, वह उतनी ही सुखी होगी। यहाँ यह बात याद रखनी चाहिए कि प्रेम की कसौटी आत्मार्पण है। अपने को देना और देना, सतत देते रहना, उसका लक्षण है। उसका दान कभी समाप्त नहीं होता, इसलिए वह अपने दान का कोई लेखा-जोखा या बही-खाता नहीं रखता। दान का यह निरन्तर स्रोत ही उसकी शक्ति है। इसी में उसका आनन्द है। इसी में उसकी वृद्धि है।

**प्रेम ही शक्ति है**

नारी, स्वभाव से, प्रेममयी है। जो प्रेममयी है वही नारी है। जिस नारी का प्रेम-स्रोत सूख गया है; जिसमें देने की, दान की

शक्ति का अन्त हो गया है वह जीते हुए भी मरी हुई है। वह अपने स्थान और रूप से च्युत तथा विकृत है। उसका जीवन मरुभूमि की भाँति सूखा, अनुत्पादक, और आनन्दशून्य है।

याद रखो, आनन्द ग्रहण करने में नहीं, दान में है। इसकी परीक्षा सहज ही की जा सकती है। तुम्हारे प्रति कोई प्रेम से भरा हो परन्तु

**दान में ही आनन्द है**

तुम्हारा उसके प्रति प्रेम न हो तो तुम्हें वास्तविक आनन्द की अनुभूति न होगी, इसके विरुद्ध तुम प्रेम से भरी हो, तुम्हारे हृदय में रस भरा हुआ है तो दूसरा तुम्हें प्रेम न भी करे तो भी तुम्हारे आंतरिक आनन्द में कमी न होगी। प्रेम की वेदना तब भी तुम्हारी है इसीलिए आनन्द तुम्हारा है; फिर चाहे बाहरी दृष्टि से तुम्हारा जीवन कठिनाइयों से ही भरा क्यों न हो ?

नारी की इस वास्तविक प्रकृति को न समझने के कारण ही आजकल की बहुत-सी शिक्षित नारियाँ प्रेम की अपेक्षा अधिकार पर, दूसरे शब्दों में दान की अपेक्षा ग्रहण पर, अत्म-निवेदन और आत्मार्पण की अपेक्षा पदमर्यादा पर अधिक जोर देती हैं। यह विकृत दृष्टिकोण है, और इससे नारी सुविधाएँ जो भी पा ले, जीवन के शाश्वत प्रेम-यज्ञ की अधिष्ठात्री देवी कभी न बन पायेगी, और जब तक वह नहीं है तब तक सब कुछ होकर भी मानो उसका कुछ नहीं है।

कहीं कोई बहिन यह न समझें कि मैं नारी को किसी प्रकार के नैतिक, सामाजिक या कानूनी अधिकार देने का विरोधी हूँ। नहीं, मैं उन

का पूर्ण समर्थक हूँ। पर यह काम प्रधानतः पुरुषों का है कि वे नारी की उन्नति के मार्ग के काँटों को दूर करें, उसे विकास की सम्पूर्ण सुविधाएँ प्रदान करें तथा वे अधिकार दिलायें जो उसके पास नहीं हैं पर उसे चाहिएँ। मैं जो कुछ कहता हूँ, उसका मतलब इतना ही है कि नारी आवेश में अपना सन्तुलन खो रही है, वह अपनी जीवन-दृष्टि भूल गई है; उसकी शक्ति का मणि-कोष उसे विस्मृत हो गया है। प्रेम, जिसे लेकर ही उसका जीवन है, जिसके कारण ही उसकी सार्थकता है जिसके कारण ही उसका मूल्य और महत्व है, जिसको लेकर ही मानव जाति को दिव्य संस्कारों की दीक्षा उसने दी है, आज गौण बन गया है। उसकी प्रधानता उसे नहीं चाहिए,—आज वह अपने को भूल कर अपने को खोज रही है!

**आत्मविस्मृता नारी!**

हाँ, तो मैं तुमसे कह यह रहा था कि तुम अधिकार चाहे जो ले लो, पर सम्पूर्ण अधिकारों का अधिकार, और सम्पूर्ण शक्तियों की शक्ति जो प्रेम है, जिसके साथ तुम परम कल्याणी और आनन्दमयी हो पर जिसे खोकर तुम निरानन्द, जीवनहीन और शिथिल हो, उसे कभी मत भूलो।

प्रायः तुमने देखा होगा कि गाँव की अपढ़ अथवा तुमसे अपेक्षाकृत कहीं कम शिक्षित लड़कियाँ गृहस्थ जीवन में शहरी और शिक्षिता लड़कियों की अपेक्षा अधिक सफल होती हैं। सौ में अस्सी सुखी भी होती हैं। उसका कारण यही है कि आज की संस्कृतिशून्य शिक्षा के वाता-

**वह नारी आज कहाँ है?**

वरण में लड़कियों का समस्त हृदय-रस सूख जाता है। दिमाग़ बढ़ जाता है; तर्क की शक्तियाँ प्रबल हो जाती हैं, छिद्रान्वेषण की प्रवृत्तियों एवं ईर्ष्या से मन भर जाता है। अपने मानस में अमृत का घट भरे, प्रेम में विभोर हो रही, हृदय मुखरित पर ओठों पर मौन एवं संकोच की वाणी बिखराती हुई जो लड़की समुराल की देहरी पर पैर रखती थी, अपने समस्त प्राणों में एक गूँज लिये, मधुभार से विजड़ित, अपने भीतर-बाहर और चारों ओर प्रेम का जादू भरे और उसे ही विकीर्ण करती हुई,—वह आज लुप्त होती जा रही है। जिस शक्ति से वह मृत्यु के दंश, जीवन-संघर्ष की व्यथाएँ, सामाजिक कठिनाइयाँ और रोग-शोक पर विजय पाती थी, उसके अभाव में ज़रा-ज़रा सी कठिनाइयों में रो देती है; शिथिल हो जाती है।

जब गेंद में हवा भरी रहती है तब चोट खा कर भी वह ऊपर उठती है, और आघात उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। प्रेम भी इसी प्रकार है। जब उससे हृदय पूर्ण रहता है, दुःख के घातक जबड़े शिथिल पड़ जाते हैं। प्रेम के स्पर्श से जीवन की अमावस पूनों में बदल जाती है; हृदय सब कुछ देकर, रिक्त होकर भी रस से भर जाता है; जीवन का बोझ हलका हो जाता है; जीवन और जगत् में जो कुछ है उसमें एक नया अर्थ दिखाई पड़ता है, एक नई ध्वनि, एक नई गूँज सुनाई पड़ती है। जीवन-कदम्ब कन्हैया की वंशी से मुखरित हो उठता है और हृदय की यमुना उमड़ती है। दुनिया एकाएक सुन्दर और मधुर हो उठती है।

समाज का, मनुष्य का जो भी विकास आज तक हुआ है, इसी प्रेम की शक्ति और प्रेरणा से संभव हुआ है। जंगली, निर्द्वन्द्व, शिकारी पुरुष को इसी ने गृहस्थ बनाया; इसी ने ग्रामों और नगरों का विकास किया और मनुष्य को सामूहिक, सामाजिक, जीवन की दीक्षा दी। यही है जिसे लेकर कुमारियाँ आजीवन सेवा के मार्ग पर चल पाती हैं; यही है जिसे लेकर देशभक्त फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते चढ़ जाता है; यही है जिसे हृदय में रखते हुए, स्त्रियाँ आग के बीच शृङ्गार करके मृत्यु पर विजय पा सकी हैं। यही है जिससे जीवन संभव है; जिससे धर्म और कर्तव्य संभव है; जिससे जगत् की समस्त श्रेयस्कर प्रवृत्तियाँ और प्रेरणाएँ जन्म पातीं और विकसित होती हैं।

तब क्या कोई भी ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तु जगत् में और है जिसके लिए जीवन-शक्ति के इस सनातन स्रोत की उपेक्षा की जा सके? मैं मानता हूँ कि जीवन में और भी बहुतेरी चीज़ों की आवश्यकता होती है; केवल प्रेम से काम नहीं चलता पर यह भी सत्य है कि यदि सम्पूर्ण वैभव, सम्पूर्ण उपादान, उपस्थित हैं किन्तु प्रेम नहीं है तो जीवन प्राणहीन शव के समान है। यदि प्रेम है तो दरिद्रता का दंश अपना विष खो चुका है; यदि प्रेम है तो जीवन की अँधियारी के बीच भी हृदय का दीपक अन्धकार पर प्रकाश की विजय की घोषणा कर रहा है; यदि प्रेम है तो कुछ भी न होकर मानो सब कुछ है। यदि प्रेम है तो नरक भी स्वर्ग है और कष्ट एवं वेदना का दंश अन्तर को घायल करने, दिलों की आशा और उमंग, सुख और शान्ति नष्ट करने में

असमर्थ है। यह आता है तो भद्दी चीज़ें भी सुन्दर हो जाती हैं; दुःखदायी चीज़ें तृप्तिकर हो उठती हैं; अन्धी आँखों को नई दृष्टि प्राप्त होती है और जीवन की अमा अकस्मात् राका—पूनो—में बदल जाती है।

किसी चीज़ से इसकी तुलना नहीं हो सकती। कुछ जादू-सा यह प्रेम है। इसके घेरे में, प्रभाव में, आते ही कष्ट उठाने में सुख का अनुभव होने लगता है और त्याग में भोग की मस्ती आती है। वह कौन-सी चीज़ थी जिसने

**जादू-सा प्रेम**

सती को घोर तपश्चर्या का लम्बा जीवन बिताने की शक्ति दी? वह कौन चीज़ थी जिसने सीता को शत्रु की कैद में भी राम में निरत रखा? वह कौन सी चीज़ थी जिसने दमयन्ती को जंगल के काँटों पर चलते हुए, हिंसक पशुओं के बीच बिचरते हुए भी धर्म और कर्तव्य में नियुक्त रखा? क्या इनका स्पष्ट उत्तर 'प्रेम' नहीं है? इन सुदूर अतीत के उदाहरणों को छोड़ दो तो भी तुम्हें किसी देश, किसी समाज और किसी युग के इतिहास में इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। जिस शहर में तुम्हारी ससुराल है या जिस गाँव की तुम बेटी हो वहाँ के जीवन में भी इसके अनेक दृष्टान्त मिल जायँगे। तुम्हारी सखी-सहेलियों में भी ऐसी मिल जायँगी जिनसे तुम इस विषय में कुछ सीख सकती हो।

प्रत्येक स्त्री को गर्भधारण में मर्मान्तक कष्ट होता है पर सन्तान के लिए वह उसे हँसते हँसते सहती है। सन्तान होने पर भी वर्षों वह उसके

लिए खान-पान में संयम रखती है। अभी चंद दिनों पहले मैंने एक स्त्री को देखा जिसे भयानक फोड़ा हो गया और आप्रेशन जरूरी मालूम पड़ा। यह स्त्री गर्भवती थी। इस कष्टकर आप्रेशन के समय जब बेहोशी की दवा प्रयोग करने का क्षण आया तो उसने पेट के बच्चे की अनिष्ट-कल्पना से बेहोशी की दवा लेने से इन्कार कर दिया और कहा—मेरे पेट का बच्चा ही मेरी बेहोशी की दवा है। आप आप्रेशन कीजिए।' और आप्रेशन के अन्त तक वह दृढ़ एवं निश्चल रही। डाक्टर आश्चर्याभिभूत रह गये। पर इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी। बच्चे के प्रेम में निमग्न उस नारी के पास वह अमृत था जो किसी भी डाक्टरी दवा से अधिक शक्तिप्रद है।

**माता का हृदय**

सब कुछ होकर भी प्रेम का न होना मानों एक शाश्वत अभाव की अग्नि में जलना है। जब मैं यह कह रहा हूँ तो मुझे तारा और मनोरमा की याद आ रही है। दोनों आधुनिक अर्थ में सुशिक्षित लड़कियाँ थीं। माता-पिता ने इन्हें लाड़ से पाला; अच्छी से अच्छी शिक्षा दी; उन पर रुपया पानी की तरह खर्च किया। ये दोनों रूपरानी थीं। जब कालेज में पढ़ती थीं तो लड़के बाहर खड़े इनके कालेज से निकलने और मोटर में सवार होने के समय की प्रतीक्षा किया करते थे। पैसा-रुपया, लाड़-प्यार, रूप-रंग, आधुनिक शिक्षा और आधुनिक शिक्षण के साथ जीवन में आनेवाली सभी चीजों का बाहुल्य था। शिक्षित कुटुम्ब की

**प्रेमहीन जीवन नरक है**

लड़कियाँ थीं माता-पिता ने इन्हें काफ़ी स्वतन्त्रता दे रखी थी। यौवन-सुलभ भावनाओं के झकोरों में पड़ी इन दोनों ने लम्बे प्रयोग और परीक्षा के पश्चात् 'सिविल मैरेज ऐक्ट' के अनुसार विवाह किया। आधुनिक भाषा ने, मानों व्यंग में, इन्हें प्रेम-विवाह कहा। दोनों के पति समाज और साहित्य के आदरणीय नेता थे। पर विवाहित जीवन में इन्हें मालूम पड़ा कि यौवन और जीवन के साथ खेल और मनो-विनोद की जो चाट उन्हें लग चुकी है उसे छोड़ सकना उनके लिए संभव नहीं। स्वभावतः जीवन के दीपक से प्रकाश कम और धुआं अधिक निकलना आरम्भ हुआ। दोनों के पतियों के दम घुटने लगे; खींचातानी शुरू हुई; बातें बढ़ती गईं। श्रीमतियों ने नारी-स्वातंत्र्य के अधिकार की रक्षा के नाम पर दुराग्रह और स्वेच्छाचार का मार्ग अप-नाया। इनमें से एक के पति बहुत सहनशील पर अत्यन्त भावुक थे। ऊपर से वह खिलाड़ी की भाँति जीवन में अपना पार्ट करते जा रहे थे पर अन्दर से खोखले होते गये। उन्होंने कभी स्त्री से कुछ न कहा पर उनके हृदय में जो अभाव हो गया था वह उन्हें जला रहा था। वह सूखते गये और एक दिन दुनिया से चल बसे। स्त्री उन्हें खा गई। अब जब इस नारी का यौवन-मधु समाप्त हो चला है तब अपने तितली स्वभाव का कहीं से पुरस्कार न पाकर उसकी आँखें खुल गई हैं और रुपया-पैसा, नौकर-चाकर, बँगला-मोटर, क्लब और प्लेटफार्म सब कुछ होते हुए भी एक अविश्रान्त रुदन, एक सनातन अभाव का दंश उसे खा रहा है। वैभव ने उसके दुःख को शतगुण कर दिया है।

दूसरी के पति पर प्रतिक्रिया दूसरे ढंग की हुई। वह अपनी स्त्री के प्रेम में भूले हुए थे; उस प्रेम से उन्हें अद्भुत् शक्ति मिली थी और अपने क्षेत्र में उन्होंने बड़ी सफलता प्राप्त की। पर ज्योंही उन्होंने पत्नी के अन्तर का दर्शन किया और बाद में यह देखा कि जिस प्रेम की शक्ति पर मैं टिका था वह काल्पनिक था, त्यों ही उनका समस्त शक्ति-स्रोत सूख गया। जैसे एक परम धनी ने एकाएक एक दिन जग कर देखा हो कि उसका सब कुछ नष्ट हो गया है और वह अत्यन्त कंगाल हो गया है। कल तक सब कुछ उसका था और आज वह भिखारी है। प्रेम की अनुभूति में मानव अपने को परमधनी, परम वैभव-सम्पन्न अनुभव करता है और उसे खोकर सब कुछ मानो निरर्थक हो जाता है। इस अभाव की अनुभूति से बचने के लिए पतिदेव ने शराब पीनी शुरू की। प्रतिहिंसा ने उन्हें आत्म-विनाश के पथ पर ढकेल दिया। यदि पत्नी में वास्तविक प्रेम होता तो वह अब भी सँभल जाती पर ज्यों-ज्यों पति उत्तर की ओर बढ़े, उसने दक्षिण की ओर बढ़ना आरम्भ किया। दोनों दूर होते गये। जीवन की समस्त आकर्षण शक्ति लुप्त होती गई। मार-पीट की नौबत आई; अन्त में पति संन्यासी हो गये। यह स्त्री आज इधर उधर लेक्चरबाज़ी करती फिरती है। नारी-अधिकारों के लिए जोशीले शब्द, शोर करने वाले शब्द—मानो हृदय के अन्दर जो क़ब्र गड़ी है उससे रह-रह-कर उठने वाली डरावनी आवाज़ की चुनौती को स्वीकार करने में असमर्थ हो; ऊपर के शोर से उसे दबाने की चेष्टा

**स्वर्ग में नरक की सृष्टि**

करती है। अखबारों में उसके सन्देश छपते हैं; इधर-उधर उसका स्वागत होता है पर मैं जब उसे देखता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है मानो प्रेमहीन जीवन की अनुभूति की प्रेतिनी उसके रूप में सदेह होकर अपने ही जीवन के शव पर नाच रही हो!

**और वह पति-प्राणा पार्वती**

इसके ठीक विपरीत चित्र पार्वती के जीवन का है। पार्वती परम विदुषी है और बाप की लाड़ली थी। पितृगृह में उसे रुपये-पैसे की कमी न थी। बचपन से वह सेवा, श्रम के कामों में लगी रही। स्कूल के दिनों में वह सांस्कृतिक विषयों पर खूब बोलती थी। संयोगवश उसका विवाह एक आदर्शों के पीछे पागल, परम सात्विक, सदाचारी पर निर्धन युवक से हो गया। माता-पिता ने सोचा था कि लड़का सुयोग्य और सुशील है, धन नहीं है तो पार्वती की हम लोग बराबर रुपये-पैसे से मदद करते रहेंगे। पर पार्वती ने, विवाह के बाद, पति की मर्यादा की रक्षा के लिए माता-पिता से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता लेने से नम्रतापूर्वक इन्कार कर दिया। उसके मायके में नौकर-चाकरों का बाहुल्य था किन्तु ससुराल आते ही उसने सब काम अपने हाथ से करना शुरू किया। सुबह चार बजे से दस बजे रात तक बराबर वह कार्य में व्यस्त रहती। बीच में उसके पति को राजनीतिक मामले में जेल जाना पड़ा। घर नीलाम करा दिया गया। कई-कई दिनों तक पार्वती को वृक्षों की छाया में दिन बिताने पड़े पर कभी उसके चेहरे से मुस्कराहट की प्रकाश-किरण धुँधली न हुई। इतना श्रम, इतना कष्ट—

उसे कुछ मालूम ही न पड़ते थे। पति के प्रति उत्कट एवं उत्कृष्ट प्रेम ने उसे असीम शक्ति प्रदान की थी। कोई अभाव, कोई कष्ट और कोई वेदना उसको उसके शक्ति एवं आनन्द के केन्द्र से हटा न सकती थी। कभी किसी ने उसे झगड़ते न देखा, कभी किसी ने उसके मुँह से हाय निकलती न सुनी। जो देखता यही कहता कि अद्भुत् लड़की है। प्रत्येक स्थिति का सामना करने को तैयार, हर हालत में मस्त। सखियाँ उससे पूछतीं तो कहती—मुझे कुछ मालूम नहीं पड़ता। कोई दुःख, कोई अभाव मुझे अनुभव नहीं होता।

सचमुच पार्वती के जीवन में कोई आश्चर्यजनक रहस्य न था। उसकी मानसिक स्थिति वही थी जिसका चित्रण गीता में किया गया है—

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'

वा

जाको लहि कछु लहन की आस न जिय में होय

जिसे पाकर फिर और कुछ पाने की इच्छा नहीं रह जाती उसी प्रेम में उसका हृदय पूर्ण था।

हमारे इतिहास में अनेक सती स्त्रियाँ हो गई हैं। कदाचित् कोई हिन्दू गाँव ऐसा हो जिसमें अथवा जिसके आस-पास सतियों के चौरे, देवले या मन्दिर न हों। किसने इन सतियों को भरे-पूरे यौवन, संतान, धन-धाम के सुख-भोग से उठकर आग में जल मरने की शक्ति दी थी और आज भी, जब जीवन के प्रलोभन बहुत बढ़ गये हैं, धर्म तथा आत्मतत्त्व के संस्कार क्षीण होते जाते हैं, जब जीवन को आर्थिक प्रवृत्तियों

की कसौटी पर कसने और शुद्ध भौतिक द्वन्द्वों के प्रकाश में देखने की विचार-प्रणाली प्रबल होती जा रही है, जब कानून का दण्ड सिर पर झूलता है, समाज की संघटित विचार-शक्ति की जिह्वा उपहास करने में तत्पर है, जहाँ-तहाँ माताएँ और बहिनें सती होती देखी जाती हैं। कई वर्ष हुए, एक स्त्री बम्बई प्रान्त में सती हुई थी और प्रामाणिक जाँच के बाद उसके विषय में निम्नलिखित विवरण प्रकाशित हुआ था—

"...बहिन ने उत्साहपूर्वक अपना शृंगार किया। पति को ज़मीन पर सुलाया, फिर दूर खड़ी-खड़ी देखती रही। जलते समय उफ़ तक नहीं किया। कमर से आँख तक उसका सारा शरीर बिल्कुल जल गया था जिससे ऊपर की चमड़ी नहीं रह गई थी। इतना जल चुकने पर भी उसके माथे के कुंकुम तथा सिर के बालों को अग्नि से स्पर्श तक नहीं किया था। उसके हाथ बिल्कुल झुलस गये थे, फिर भी पुलिस के बयान पर उसने अपने हाथ से हस्ताक्षर किये थे। वह स्वयं चल कर घर में आई। शरीर बुरी तरह जल गया था फिर भी अन्त तक पूर्ण प्रसन्नता के साथ हर एक से बातचीत की। पति के साथ अपने को श्मशान ले जाने का आग्रह किया। अपने निश्चय के बल पर एक ही चिता पर जलने का अपना मनोरथ प्रकट किया; आध घंटा ठहरने को कहा। दो बार चिता बुझी परन्तु उसी चिता में उसकी मृत देह रखने पर चिता में लपटें उठने लगीं और दो घंटे में दोनों की देहें भस्मीभूत हो गईं।"

**वह सती !**

यह एक उदाहरण है। ऐसी भी सती स्त्रियाँ देखी गई हैं जिन्होंने

पति की देह अपनी गोद में रखकर चिता में प्रवेश किया है और उनके ध्यानस्थ होते ही चिता से या शरीर से स्वयं अग्नि प्रकट हुई है। बहुत से शिक्षित जन ऐसी बातों को अवैज्ञानिक समझ इनका उपहास करते हैं पर इस में कुछ भी अवैज्ञानिक नहीं है। शरीर में निहित अग्नि-तत्त्व को विकसित करके व्यक्त कर देना योग शक्ति का साधारण चमत्कार है।

मैं यह जानता हूँ कि कानून और शिक्षित समाज का बहुमत इस प्रकार के मरण के विरुद्ध है। महात्मा गांधी-जैसे युग-पुरुष तक ने इसका विरोध किया है। मेरा यह भी अभिप्राय नहीं कि हर एक को ऐसा करना चाहिए या प्रत्येक के लिए यह उचित और सम्भव है। यहाँ इस विवाद में पड़ने की भी आवश्यकता नहीं कि ऐसा करना उचित है या अवाञ्छनीय। मैं यह भी नहीं कहता कि सतीत्व का आदर्श केवल मरकर ही सिद्ध हो सकता है। मैंने ऐसी स्त्रियों को देखा है जिन्होंने पति की मृत्यु के पश्चात् प्रेम और कर्तव्य की वेदी पर अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है; जगत् के भोगों से दूर रहकर समाज की सेवा और कल्याण के व्रत का निर्वाह किया है। मैं मानता हूँ कि प्रकृतिस्थ होकर, स्वस्थ होकर अपने को तिल-तिल देना सर्वस्वान्तक त्याग के एक क्षण से अधिक महत् है। मैं यह जानता हूँ कि प्रेम अपने को अनेक रूपों में अनेक रीतियों एवं मार्गों से व्यक्त करने की शक्ति रखता है। इसलिए भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में प्रेम की अभिव्यक्ति और परणति भिन्न-भिन्न रूपों में होती है। इतना होते हुए भी मैंने सतियों का उदाहरण उपस्थित किया है। मेरी जीवन

**उत्सर्ग की सीमा**

को देखने की एक दृष्टि है। मैं मानता हूँ कि प्रेम जीवन को अमृत से पूर्ण कर देता है; वह मृत्यु पर जीवन की विजय, अन्धकार पर प्रकाश की विजय की घोषणा करता है। किसने इन स्त्रियों को मृत्यु का आवाहन करके उसका उपहास करने की शक्ति दी? किसने उनको आग में जलने के कष्टों को सहन करने योग्य बनाया? किसने उनको मरते समय हँसने का बल दिया? क्या प्रेम के बिना यह सम्भव है?

मारने में जगत् ने शक्ति का झूठा आभास पाया है, इसीलिए युद्धों के वीर नायकों के यशोगान से इतिहासों के पन्ने भरे हुए हैं पर

**मारना और मरना**

मरने, निरुद्वेग, शान्त चित्त हँसते हुए मरने में जो असीम शक्ति का उल्लास है उसका आंशिक ज्ञान भी समाज को नहीं हुआ है। इसी मरने की शक्ति ने भारतीय नारी को अजेय कर दिया था; इसी ने चिरन्तन दान की देवी के रूप में उसकी अवतारणा की थी; इसी ने उसे मृत्युञ्जयी बना दिया था। पुरुष और स्त्री के शक्ति-स्रोत में यही अन्तर है; पुरुष जीवन की रक्षा के लिए मृत्यु से रण ठानता है; स्त्री हँसते हुए मृत्यु का आवाहन कर मृत्यु से भय का दंश नष्ट कर मृत्यु पर जीवन के विजय की घोषणा करती है।

वह प्रेम ही है जो उसे मरने की शक्ति देता है; वह प्रेम है जो उसके दान की झोली को कभी रिक्त—खाली—नहीं होने देता। वह प्रेम है जिसके कारण वह है। प्रेम ही उसका स्वरूप है। उसे खोकर उसका कुछ नहीं; उसे पाकर उसका सब कुछ है।

---

# प्रेम की साधना

तुम कहोगी, प्रेम पर लेक्चरबाज़ी तो आपने खूब की और हमने सुना भी। हम मान गईं कि प्रेम आकाश-पाताल एक कर सकता है, तारे तोड़कर ला सकता है, मृत्यु और दुःख की अँधियारी में उज्ज्वल प्रकाश की भाँति जीवन पर छा जाता है; हम मानती हैं कि उसकी शक्ति असीम है और उसके बिना सब कुछ निरर्थक और स्वादहीन है। आपने हमें कोई नई बात नहीं बताई; हम इसे आप से अधिक जानती हैं। ऐसी कौन नारी है जो इसे समझती न हो? प्रेम जीवन का अमृत है; इससे यह होता है, वह होता है—ठीक, पर आखिर यह अमृत कहाँ मिलता है। कैसे हम उसे प्राप्त कर सकती हैं; कुछ तरकीब बताइए, तब हम समझें!

मैं मानता हूँ मैंने कोई नई बात नहीं बताई। यह भी जानता हूँ कि प्रत्येक स्त्री प्रेम के महत्व को पुरुष से अधिक समझती-जानती है।

**हमारे पास जादू नहीं**

पर जीवन में, और सबसे अधिक गृहस्थ वा दाम्पत्य जीवन में केवल जानने से काम नहीं होता। जो तुम जानती हो उसे अपने हृदय में, और फिर दैनिक जीवन में, उतारने से काम बनता है। जो कुछ तुमसे कहा गया है या जो कुछ तुम जानती हो उसे सुनो, बार-बार उसे सोचो, समझो, हृदय में धारण करो। जीवन के सुखों के लिए मैं कोई नया जादू का नुस्खा नहीं बता सकता, कोई न बता सकेगा। जो बताने का दावा करता है, झूठा है। बातें पुरानी ही होती हैं जिन्हें हम युग-युग से सुनते आये हैं या जानते हैं पर किसी क्षण-विशेष में, विचार या अनुभूति की प्रबलता में, वे एक नवीन प्रकाश से भर उठती हैं, जैसे अन्धकार में प्रकाश का एक भभूका उठे या हृदय के बन्द किवाड़ खुल जायँ।

इसलिए सब से पहले इन पुरानी बातों के बीच भी तुम अपने हृदय को नित्य नवीन रखो; शब्द और वाणी के आवरण को, जो पुराना और आकर्षणहीन जान पड़ता है, भेदकर उसके भीतर प्रवेश करो—उसके रस में डूबो। वे बोलेंगे और उन्हीं में तुम्हें नवीन चमत्कार दिखेंगे।

मैं अपने एक मित्र को जानता हूँ जो एक उच्च कोटि के लोक-सेवक हैं और विचारवान, चरित्रवान व्यक्ति हैं। यह अपनी स्त्री को

चाहते हैं किन्तु उनके इस चाहने के बावजूद परिस्थिति निराश करने वाली है। उनकी स्त्री में जैसे उल्लास और नवीन बातों को ग्रहण करने की शक्ति का अभाव है। वे जब नारी समस्याओं पर उनकी कठिनाइयों में सहायक प्रतीत होने वाली अच्छी पुस्तक लाकर पत्नी को सुनाने की चेष्टा करते हैं तो वह उसमें दिलचस्पी नहीं लेती। थोड़ा सुनकर कहती है—इसमें नई क्या बात है। यह सब मैं जानती हूँ। मित्र बेचारे हताश होकर बैठ जाते हैं; उनका मुँह उतर जाता है।

यदि तुम जानती हो तो उस जानने का लाभ क्यों नहीं उठाती? क्यों तुम्हारे जीवन में वे शब्द प्रतिध्वनित नहीं होते? क्यों उनके रस से तुम्हारा हृदय नहीं भीगता? क्यों तुम केवल उन्हें सुनकर और जान कर चुप रह जाती हो?

प्रेम नारी का स्वरूप है। उसे कहीं से लाना नहीं है; उसकी कोई दुकान नहीं कि मैं पता बता दूँ और तुम जाकर खरीद लाओ। वह स्वयं तुम्हीं में समाया हुआ है। एक रस का सोता है जिसके मुँह पर तुमने उपेक्षा और उदासीनता का भारी पत्थर वा ढक्कन रख दिया है। तुम उसके बिना छटपटा रही हो; प्यास से गला चटख रहा है; तुम दूसरों के दरवाज़े—दरवाज़े उसे ढूँढ़ती फिरती हो; तुम्हारा जीवन सूखा जा रहा है; हृदय की खेती सूख रही है और तुम हो कि भूल गई हो कि तुम्हारे ही अन्दर अमृत का एक झरना मुँह बन्द किये सो रहा है। तुमको करना इतना ही है कि इधर-उधर झाँकना बन्द करो; दूसरों की ओर न

**अमृत का झरना**

देखो; किसी से भिक्षा और सहायता न माँगो। हिम्मत करके उदासीनता के उस ढक्कन को हटा दो; अपने वास्तविक सौन्दर्य को जगने दो, अपने अन्तर-रस को उभरने दो। तुम्हारा अन्तर प्रेम से भरा हुआ है पर तुमने प्रतिकूल परिस्थिति से ऊब कर, प्रतिदान न पाकर वा संसार को न समझ कर खीझ के कारण हृदय का दरवाज़ा बन्द कर लिया है और वहाँ से प्रकाश और रस न पाकर, कष्टकर एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से खीझ कर, तुम मान बैठी हो कि तुम्हारे लिए दुनिया अँधेरी है; तुम्हारे लिए सुख नहीं, आनन्द नहीं। इस ग़लत अनुभूति ने तुम्हारी वह स्फूर्ति हर ली है जिसके कारण विवाहित जीवन के प्रारंभिक दिनों में पहाड़-से काम बात की बात में समाप्त हो जाते थे। इसी भूल के कारण तुम्हारी वह मुस्कराहट लुप्त हो गई है जो तुम्हारे ओठों में, तुम्हारे 'उनसे' लुका-छिपी-करती दौड़ती रहती थी और कभी आँखों में चमक उठती, कभी गालों की चुटकी लेकर उन्हें गुलाबी कर देती थी।

मत भूलो कि प्रेम कभी पुराना नहीं होता। वह सदा नवीन है। पर उसे हरा-भरा रखने के लिए वही हार्दिक सरसता, वही उमंग, वही निष्ठा, वही आत्मार्पण की वृत्ति चाहिए जो एक दिन तुम में उदय हुई थी। प्रेम का बिरवा तो तुम्हारे हृदय में लगा हुआ है पर प्रत्येक पौधे की भाँति उसे भी पोषक रस चाहिए, अधिक सरदी-गरमी से उसे बचाना चाहिए। क्रोध की जलन में वह झुलस जाता है और उपेक्षा

**मानसिक रसमयता**

तथा उदासीनता का शीत उसे सुखा देता है। इसलिए जब तुम कुछ उपाय ही पूछती हो तो मैं कहूँगा कि प्रेम की साधना के लिए मानसिक रसमयता की सबसे पहले आवश्यकता है। अनूकूल परिस्थिति में तो सभी हँसते हैं, सभी मृदु बोलते हैं, सभी हँसी-खुशी की बातें करते हैं। जब कठिनाइयों के बीच भी दिलों में प्रवेश करने वाली मुस्कराहट क़ायम रहती है और रस-भीगे हृदय से मधुर-मधुर बूँदो की वर्षा होती है तभी प्रेम पनपता है। तुम अपनी सरलता, अपनी मृदुता, अपनी वह हँसी कायम रखो, जो जवानी के क्षितिज पर सौन्दर्य की उषा-सी मोहक लगती है। अपने सौन्दर्य और स्वास्थ्य को दुःख और अभाव की अनुभूति से निर्बल न होने दो। कभी मन को मलिन न करो; कभी मुखचन्द्र पर ग्रहण न लगने दो। अपने हृदय को कभी छोटा न करो। कोई व्यंग करे, हँसकर टाल दो, कोई ईर्ष्या करे भूल जाओ। अपने को इस छूत से बचाओ। मन को सदैव प्रफुल्ल रखो, उसमें जो अदभुत् शक्ति है उसे पहिचानो। यदि दूसरों पर उसका असर न भी होगा तो भी तुम्हारा स्वास्थ्य, तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारा सुख बना रहेगा।

सुख और दुःख बहुतेरी बातों पर निर्भर करता है, फिर भी मुख्यतः वह एक मानसिक स्थिति है। इसीलिए यह बिल्कुल सच है कि सुखी दुखी होना बहुत करके अपने बस की बात है।

**मातमी स्वभाव**

बहुत-सी स्त्रियों का स्वभाव ही मातमी होता है; वे हर बात का अँधेरा पक्ष देखती हैं। विनोद करो तो उसे गम्भीरता-

पूर्वक लेकर एक आवैला खड़ा कर देती हैं; काम करते समय झकती हैं, न काम रहे तो शिकायत करती हैं। कोई इन्हें सुखी नहीं कर सकता। मैं एक स्त्री को जानता हूँ। वह काम काफ़ी करती है पर उसके तेवर सदा चढ़े रहते हैं; मुँह लटका रहता है। छोटे-छोटे निर्दोष और प्यार करने लायक बच्चे ठुमकते और माँ-माँ करते उसके पास आते हैं। वह चीखती है—"अरे बाप रे, कैसे बच्चे हैं, रात-दिन हमारे ही सिर पर सवार रहते हैं। ईश्वर, ऐसी औलाद किसी को न दे। इनके मारे न रात चैन, न दिन।" उसे बच्चों को सुधारने का बस एक ही नुस्खा मालूम है—पिटाई करना। जीवन में किसी से उसकी नहीं पटी। सास से उसे शिकायत है; ननदों को देख कर वह मुँह बनाती है। पति को तो वह सब कष्टों की जड़ समझती है। किसी ने उसके मुँह से प्यार के रस बरसाने वाले शब्द नहीं सुने। किसी ने उसे स्वाभाविक मुक्त स्वच्छ हँसी हँसते नहीं देखा।

ऐसी स्त्री भी बात चलाने पर कहती है—मैं सब जानती हूँ। उसकी शिकायत है कि उसका जीवन चौपट हो गया। पर सच यह है कि दया और सहानुभूति का पात्र उसका पति है; उसके बच्चे तथा वे लोग हैं जिनको उसके साथ जीवन बिताने को विवश होना पड़ रहा है। ऐसी स्त्री प्रेम का न अनुभव कर सकती है, न उसे पा सकती है। वह न स्वयं सुखी होगी, न दूसरों को चैन लेने देगी।

मैंने यह औरत तुम्हारे सामने इसलिए पेश की है कि तुम सावधान हो। इससे बचो। जीवन में कोई चीज़ उतनी खतरनाक नहीं है;

जितनी दुखी, मलिनवदना और उदास रहने की आदत है। पहले इसका ज़हर मालूम नहीं होता पर बाद में सारे जीवन को अस्वस्थ, लाचार और पंगु कर देता है। याद रखो, प्रेम के स्रोत को सुखा देने वाली इससे भयंकर दूसरी चीज़ नहीं है। यदि सच्चे प्रेम-रस का अनुभव करना चाहती हो तो कभी दिल छोटा न करो, कभी मुँह लट-काने की आदत न डालो। दुःख के दंश से बचो। सदा हँसी-खुशी से रहो; सदा यों बोलो मानो तुम्हारी जीभ में अमृत है और उसके निक-लने वाले शब्द दिलों को गुदगुदाते हैं और कान को प्रिय लगते हैं।

दाम्पत्य प्रेम की साधना के लिए दूसरी ज़रूरी बात तुम्हारा अपना स्वास्थ्य और सौन्दर्य है। यह स्वास्थ्य और सौन्दर्य भी बहुत करके तुम्हारे प्रसन्न रहने और अपने हृदय को रसमय बनाये रखने की तुम्हारी शक्ति पर निर्भर करता है। चिन्ता, उदासी और मानसिक खीझ या जलन स्वास्थ्य और सौन्दर्य को दीमक की भाँति चट कर जाते हैं। यौवन-काल में नारी के शरीर में जो सौन्दर्य खिलता है या जो मोहिनी आती है वह निरर्थक नहीं है। वह प्रकृति की एक महती देन है। दाम्पत्य जीवन की सफलता में शारीरिक आकर्षण का भी स्थान और महत्त्व है। यों भी सौन्दर्य के लिए जीवमात्र में भूख होती है। जब हम किसी सुन्दर सुडौल बच्चे को देखते हैं, कोई सुन्दर फूल हमारे बाग में खिलता है तो हम उसकी ओर आकर्षित होते हैं। सुदर्शन, देखने में अच्छी, चीज़ें सभी का मन मोहती हैं। धँसी हुई आँखें, धँसे गाल, बैठी छातियाँ,

**इस मोहिनी की रक्षा करो**

पीले और फीके चेहरे लेकर स्त्री पति का हृदय जीतने और दाम्पत्य जीवन के सुख की आशा नहीं कर सकती। ऐसी स्त्रियाँ आज हमारे समाज में बढ़ रही हैं जिनके मटमैले चेहरे और फटी आँखें ऐन जवानी में बुढ़ापे का बिरवा रोप रही हैं; इनके मन सुस्त हो गये हैं, दिलों में उमंग नहीं; कोई मेहनत का काम आ पड़ा कि इनके दिल बैठ जाते हैं। ऐसी ठंडी स्त्रियाँ किसी भी सामान्य पति की प्यारी नहीं हो सकतीं। इनकी शिकायत से समाज में एक कोलाहल है पर इनकी समस्त चेष्टाएँ स्वास्थ्य और सौन्दर्य के बिना जंगल में रोने के समान व्यर्थ हैं। यदि तुम समझदार नारी हो तो तुम यह भी जानती होगी कि जवानी में शारीकि सुख की इच्छा स्वाभाविक है; यौवन और सौन्दर्य की वृत्ति स्वाभाविक है। इसलिए तुम्हें अपनी शक्ति, अपना सौन्दर्य और अपनी जवानी ज्यादा से ज्यादा समय तक कायम रखने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए। पहले की स्त्रियों को परिधान में रंगों की योजना का अच्छा ज्ञान होता था; वे भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियाँ रँगती थीं और किस साड़ी के साथा कैसी चोली और कैसा ब्लाउज पहनना चाहिए, इसे जानती थीं। सौन्दर्य के साथ हमारे यहाँ प्रसाधन और शृंगार की कला की बड़ी उन्नति हुई थी। आज प्रदर्शन की वृत्ति मनुष्य में बढ़ गई है इसलिए उसकी तृप्ति के लिए तुम्हें भी सावधान और सचेष्ट रहने की आवश्यकता है।

दाम्पत्य प्रेम के लिए तीसरी शर्त्त स्त्री में पति के प्रति श्रद्धा, विश्वास और आदर-भाव का होना है। इसके बिना किसी प्रभाव की

आशा करना कोरी मृगतृष्णा है। जिस नारी में पति के लिए ममत्व और सद्भाव नहीं है, जिसमें उसके प्रति सम्मान और आदर नहीं है, वह न कभी स्वयं सुखी होगी, न पति या घर के अन्य लोगों को सुखी कर सकेगी। पति के प्रति जरा भी अवज्ञा, तिरस्कार या उपेक्षा की वृत्ति नारी को उसके उस केन्द्र स्थान से हटा देती है जो उसका है और जहाँ रह कर ही वह घर में प्रकाश और प्रेम की वर्षा कर सकती है।

दाम्पत्य प्रेम के सम्बन्ध में स्त्रियाँ एक और बड़ी भूल का शिकार हो जाती हैं। वे समझ लेती हैं कि जो प्रेम एक बार हुआ,

**प्रेम का बिरवा**

वह कभी टूटता नहीं है और वे अपने अनुरक्त पति के सम्बन्ध में यह धारणा बना लेती हैं कि अब तो वह मेरे हैं; उनका प्रेम मैं खो नहीं सकती। इस भूल के कारण सैकड़ों घर उजड़ गये हैं और कितनी ही गृहस्थियाँ बर्बाद हो गई हैं। आश्चर्य है कि एक स्त्री अपने सौ-पचास रुपये के गहने की तो ऐसी रखवाली करेगी मानों वह उसके प्राणों से अधिक मूल्यवान हो पर वही स्त्री पति और उसके प्रेम के सम्बन्ध में कुछ दिनों बाद उदासीन और ला-परवाह हो जाती है। वह भूल जाती है कि जैसे पौधे को बराबर पानी और खाद की ज़रूरत पड़ती है तैसे ही प्रेम के अंकुर की वृद्धि के लिए भी सतत चेष्टा करनी पड़ती है। पुरुष सदा अपनी स्त्री को उसी नवागता वधू के हृदय की उमंग, गरमी और उल्लास के साथ देखना चाहता है; वह प्रति दिन स्त्री के कार्यों से, वचन से, इस बात की घोषणा और पुष्टि चाहता है कि मेरे बिना उसका जीवन अर्थहीन

है। इसलिए चतुर और पुरुष स्वभाव का ज्ञान रखने वाली स्त्रियाँ अपनी प्रेमपूर्ण बातों, अपनी लज्जा-मिश्रित मुस्कराहट और मधुर हँसी से अपने-अपने पति के हृदय की भूख को सदा बनाये रखती हैं। इसलिए इस प्रेम को जीवन का सबसे मूल्यवान उपहार समझकर सदा उसकी रक्षा में सचेष्ट रहो। यह तुम्हारे जीवन का जीवन है; यह तुम्हारे भाग्य की कुंजी है; यह तुम्हारे सोहाग की घोषणा है। तुम जो कुछ हो, इसी के कारण हो; तुम्हारा सुख इसी के कारण है; तुम्हारी पदमर्यादा के मूल में भी इसी का प्रकाश है। इसके बिना तुम एक कंकाल हो, एक उपेक्षित कंकाल। नारी के लिए प्रेम—पति का, प्रेम, निरन्तर प्रेम—पहली आवश्यकता है। सदा इसे बढ़ाने की चेष्टा करो; कभी मुँह से कोई ऐसा शब्द न निकलने दो जिससे इसके टूटने का खतरा उपस्थित हो; कभी कोई ऐसा काम न करो जिससे इसपर आँच आवे। उसी नवोढ़ा की कच्चे दूध की भाँति उज्ज्वल पर स्निग्ध हँसी के साथ प्रतिदिन प्रातः पति को प्रणाम करो। प्रेम और मंगल से पूर्ण वातावरण में प्रतिदिन का आरम्भ होने दो और दिन के श्रम और संघर्ष से थके हृदयों को रात की स्नेह-सिक्त सहानुभूति और निजत्व से मृदुल और आशापूर्ण करना कभी न भूलो। प्रत्येक दिन का आरंभ प्रेम से हो; प्रत्येक दिन का अन्त प्रेम से हो।

—o*o—

# जब काँटों में फूल खिलेंगे !

यदि बातें बढ़ानी ही हों तो जीवन के न जाने कितने पहलू हैं; कितनी बातें और समस्याएँ हैं। उनका अन्त नहीं। इसलिए मैंने नारी जीवन के केवल उन्हीं पहलुओं को लिया है जिनका अधिकांश स्त्रियों को वास्ता पड़ता है या जिनके सम्बन्ध में ठीक जानकारी प्राप्त कर और उनपर आचरण कर वे अपनी दुःखपूर्ण रजनी का अन्त कर सकती हैं। इसलिए थोड़ा लिखकर भी मैं एक प्रकार से बहुत लिख चुका हूँ, और अच्छा हो कि मेरी बहनें अब उनको जीवन में उतारने में सचेष्ट हों।

फिर भी कुछ ऐसी बातें हैं जो हमारे दैनिक जीवन में प्रायः दिखलाई पड़ती हैं और जीवन के सौख्य का सर्वनाश कर डालती हैं।

हमारे जीवन, विशेषतः गृहस्थ या दाम्पत्य जीवन को नष्ट एवं दुःखमय बनाने में ईर्ष्या और वहम का बड़ा भाग होता है।

**ईर्ष्या का डंक**

जहाँ पति पत्नी झूठे वहम के कारण एक दूसरे का भेद लेते फिरते हैं; जहाँ स्त्री सदैव पति पर जासूसी करती है, वह किससे मिलते हैं, किससे बोलते हैं, किससे हँसते हैं, किसको क्या देते लेते हैं तहाँ किसी प्रकार के दाम्पत्य सुख की आशा नहीं की जा सकती। जहाँ भ्रम और सन्देह है, जहाँ ईर्ष्या है, जहाँ वहम है, तहाँ आदमी की अक़्ल पर पर्दा पड़ जाता है; वह सचाई को देख और समझ नहीं पाता। जब ईर्ष्या जगती है और वहम पैदा होता है तब लोग ऐसी ऐसी बातों की कल्पना कर लेते हैं जिनके न सिर होता है, न पाँव। प्रत्येक घटना और प्रत्येक दृश्य उनकी मनगढ़न्त कल्पना की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं। मन खट्टा होता जाता है और झूठा वहम कभी-कभी सच्चा हो जाता है।

अगणित गृहस्थियाँ इस ईर्ष्या और वहम की आग में झुलस गई हैं· लाखों आशा और शक्ति से भरे हृदयों को इस बीमारी ने निराश, अशक्त और पंगु कर दिया है। बेटियो और बहिनो, यदि तुम अपने घर को स्वर्ग बनाना चाहती हो तो इससे बचो। इस रोग की कोई निश्चित दवा नहीं; इससे बचने का सिर्फ एक ही उपाय है—समझ से काम लेना; धीरज और शान्ति रखना।

मैंने अनेक स्त्रियों में एक और वहम देखा है। वे कल्पना कर लेती हैं कि उनके पति अब उन्हें प्यार नहीं करते। ( इस प्रकार का भ्रम

पुरुषों में भी खूब है पर यहाँ मैं स्त्रियों के विषय में ही लिख रहा हूँ।) पुरुष काम-काजी प्राणी है। बहुधा जीविकोपार्जन और जीवन-युद्ध में उसका बहुत समय जाता है और उसकी शक्ति का क्षय भी होता रहता है। उसे इतना समय नहीं मिलता कि वह सदा प्रेम के सपने देखे और उनके गीत गाये। यदि अवसर मिलता भी है तो जीविको-पार्जन में उसे इतनी थकान और शिथिलता आ जाती है कि सावन की रिमझिम वर्षा और वसंती वायु की थपकियाँ उसे व्यंग-सी लगती हैं। उसका जीवन प्रकृति से दूर पड़ गया है। तुम देखोगी कि आज भी गाँवों के पुरुष और स्त्रियों दोनों में जीवन की लहर अधिक वेगवती है। वहाँ स्त्रियाँ मलार गाती हैं, कजली गाती हैं, झूले झूलती हैं, और पुरुषों के कंठ से अमराइयों और हरे-भरे खेतों में विरहा फूटता है तथा आल्हा का वीर गान सुनाई पड़ता है। नगर के पुरुष और स्त्रियाँ एक अप्राकृतिक वातावरण में जीने के कारण जीवनवाहक तत्वों से शून्य होते जाते हैं। स्त्रियों को यह स्थिति समझनी चाहिए। अधिकांश पुरुषों के हृदय में अपनी पत्नियों के लिए प्यार और दुलार, सहानुभूति और निजत्व का भाव होता है पर ज्यों-ज्यों ज़िम्मेदारियों का बोझ बढ़ता जाता है, उनकी सुकुमार इच्छाएँ, उमंगें और प्रवृत्तियाँ दबती जाती हैं। उनको प्रकट करने का अवसर तथा अनुकूलता उन्हें नहीं प्राप्त होती। इससे स्त्रियों को यह न समझ लेना चाहिए कि आँखें बदल रही हैं या मामला कुछ और है। विश्वास और श्रद्धा ही दाम्पत्य जीवन का प्राण है।

श्रम

दाम्पत्य जीवन का दूसरा खतरा बाहर से आता है। एक सच्ची सहेली, एक सच्चा मित्र जीवन का वरदान है। वह शुष्क मरुभूमि पर फैली स्वच्छ चाँदनी के समान जीवन की कुत्सा, जीवन के भद्देपन को ढक लेता है; उसे सौन्दर्य प्रदान करता है। वह अपनी उदार सहानुभूतियों के आलिंगन में लेकर हमारे सन्तप्त हृदयों को शान्ति प्रदान करता है। वह हृदय रूपी सीपियों में स्नेह के मोती सजाता है। पर आजकल ऐसे मित्र दुर्लभ हैं। आजकल की मित्रता खान-पान, नाच-रंग, होटलबाज़ी इत्यादि पर आश्रित होती है; हृदयों का सम्बन्ध उसमें कम ही दिखाई पड़ता है। मित्र के कल्याण और विकास की अपेक्षा उसे मूर्ख बनाने, उसका अनुचित लाभ उठाने, स्वार्थ-साधन में उसका उपयोग कर लेने की वृत्ति ही अधिक दिखाई पड़ती है। भौतिक एवं स्थूल आकर्षणों एवं रुचियों पर बनी मित्रताएँ जीवन की कठोर परीक्षाओं के बीच ठहर नहीं सकतीं; इनके कच्चे धागे में बँधे जीवन एक झटके में टूटकर अलग हो जाते हैं। ऐसे मित्र अपने ही मित्रों को अपनी बुरी आदतों का शिकार बनाते हैं। ऐसे मित्रों से सावधान रहो। उनसे साँप की तरह बचो। स्त्रियों में भी आजकल यह ज़हर खूब फैल गया है। एक से एक चालबाज़, दंद-फंद जाननेवाली पर ऊपर से भली लगने वाली स्त्रियाँ समाज में पैदा हो गई हैं। सीधी-सादी बहिनें इनकी लुभावनी और मीठी बातों में आ जाती हैं और उन्हें अपना सच्चा हितैषी समझ लेती हैं। ये स्त्रियाँ घरों का भेद लेती फिरती हैं

**मित्रों से सावधान रहो**

और शान्त घरों में आग लगाना इनका मुख्य मनोविनोद होता है। बहिनो, याद रखो, सच्चा मित्र, सच्ची सखी दुर्लभ होती है और ईश्वर के आशीर्वाद की भाँति कभी-कभी मिलती है। इसलिए मित्रों एवं सखियों के चुनाव में सावधानी से काम लो। जो स्त्री तुम्हारे पति और तुम्हारे बीच बहुत ज्यादा दिलचस्पी लेती है; सदा तुम्हें सलाह देने को तैयार रहती है, उससे बचो; वह तुम्हें और तुम्हारे घर को खा जायगी।

मैं कई जगह कह चुका हूँ कि स्त्री-पुरुष के बीच अत्यन्त निजत्व, अत्यन्त अपनेपन का भाव ही गृहस्थजीवन की नींव है। दुःख में, सुख में, कभी इसे भूलना न चाहिए। कोई ऐसा घर नहीं है जहाँ कभी न कभी चखचख न चलती हो या झगड़े न हो जाते हों। मानव-सुलभ दुर्बलताएँ सभी जगह होती हैं। जैसे बाहर उँजेला और अँधेरा आते और जाते रहते हैं तैसे ही जीवन में भी सुख-दुःख लगे रहते हैं। प्रायः दुःख में आदमी का विवेक नष्ट हो जाता है और वह मूर्खतापूर्ण आचरण करने लगता है। मैंने अनेक स्त्रियों को देखा है जो ज़रा से निजी झगड़े को घर के अन्य सदस्यों, नौकरों-चाकरों और सखी-सहेलियों में फैला देती हैं। वे उनसे अपना 'दुखड़ा' रोती हैं और अपने पर होने वाले अन्याय में उनकी सहानुभूति चाहती हैं। यह स्त्रियों के पक्ष में एक बहुत बड़ी गलती है। ऐसा करके वे अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारती हैं और अपने सौभाग्य-सुख की जड़ काट देती हैं। कोई बात पुरुष-हृदय को इतना विरक्त नहीं करती जितना

उसकी स्त्री-द्वारा ही उसके और उसकी पत्नी के बीच के झगड़े को दूसरों में प्रसार करने की वृत्ति करती है। इससे निजत्व का बन्धन टूट जाता है। तुम ऐसा करके मानो यह प्रकट करती हो कि तुम्हारे पति की अपेक्षा दूसरे तुम्हारे लिए अधिक निकट हैं। पुरुष अपने अहंकार के कारण अपने झगड़े अपने साथियों तक शायद ही कभी पहुँचाता हो। मैंने ऐसे पतियों को देखा है--और उनकी संख्या बहुत अधिक है--जो कलहकारिणी स्त्री के साथ अपने दुःखद सम्बन्ध को भी मित्रों में सुखद ही बताने का प्रयत्न करते हैं और अन्दर अन्दर घुटते रहते हैं। स्त्रियों में प्रायः इसका उलटा होता है। इस विषय में वह अधिक भावना-प्रधान अतः अधिक वाचाल होती है। प्यारी बहिनो, इस भूल से बचो। जबतक दुःख असह्य न हो जाय, अपने झगड़ों को दूसरों तक न ले जाओ; दूसरों को अपने बीच पंच न बनाओ। इससे तुम दोनों के हृदय की खाई गहरी होती जायगी और बहुधा दूसरे लोग उसे अपने मनोरंजन का साधन बनायेंगे। वे कभी तुम्हारा पक्ष लेंगे, कभी तुम्हारे पति का। इस तरह बात का बतंगड़ होता जायगा और ज़रा-सी जलन नरक की उस अग्नि की सृष्टि करेगी जिसमें तुम उतना ही फँसती जाओगी जितना उससे छूटना चाहोगी। चुप रहो या अपने झगड़ों को अपने ही बीच तय कर लो। भूल कर भी अपने बीच दूसरों को पंच न बनाओ।

**अपने झगड़े अपने ही तक रखो**

आजकल स्त्री और पुरुष दोनों में तुनुकमिजाजी बढ़ रही है;

सहनशीलता का लोप होता जा रहा है। जो स्त्री सहनशील होती है; छोटी-छोटी और पिन की तरह चुभनेवाली बातों को एक कान से सुनती, दूसरे से निकाल देती है; जो बात का जवाब बात से, व्यंग का व्यंग से न देकर एक मुस्कराहट के साथ विष को पी जाती है वह सदा सुखी रहेगी। हमारे जीवन में रोज़ न जाने कितनी बातें उठती हैं जिन पर हम गंभीरता-पूर्वक ध्यान दें या उन्हीं में उलझकर रह जायँ तो हमारा जीना दुर्लभ हो जाय। सुख हमें तभी मिल सकता है जब जीवन-युद्ध में सच्चे खिलाड़ी की तरह हम आचरण करें। भावुक आदमी, इसीलिए, अधिक दुखी होते हैं। वे ज़रा-ज़रा सी बातों को कल्पना से तूल दे देते हैं। हमारी माँओं और सासों का जीवन इसी-लिए अपेक्षाकृत सुखी था। वे ठोस ज़मीन पर चलती थीं; हवा में उड़ना उन्हें नहीं आता था।

**कार्यव्यस्तता सुख का मंत्र है**

ज़िन्दगी में सुख प्राप्त करने का कोई छोटा रास्ता नहीं है। उसका एक ही उपाय है, हर हालत में प्रसन्न और सुखी रहने की आदत डालना। अपने मन को व्यर्थ चिन्ताओं से, व्यर्थ की कल्पनाओं से सदा बचाना चाहिए। जो स्त्रियाँ बेकार रहती हैं, या जिनके पास काम की जितनी ही कमी है उनका जीवन उतना ही दुःखपूर्ण होता है। जीवन में सुखी होने का मंत्र अपने को सदा किसी काम में लिप्त रखना है। जो लोग अपने को काम में इतना निमग्न रखते हैं कि दुःख-सुख की निरर्थक कल्पनाएँ करने का अवसर ही उन्हें नहीं मिलता वे ही सन्तुष्ट

रहते हैं। अपने मन और शरीर की सम्पूर्ण शक्तियों को किसी काम में केन्द्रित कर देना, कार्य में तन्मय हो जाना ऐसा सुख है जिसकी कोई तुलना नहीं और जिसके बराबर कोई सुख नहीं। वह कर्म ही ऐसे व्यक्ति का सुख है। कहावत है--खाली मन शैतान का घर है। कभी बेकार न बैठो, बेकारी, निठल्लापन नरक का द्वार है; यह शरीर को खा जाता है और मन को पंगु कर देता है। उसे अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों की ओर ले जाता है। उनसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं जो सोचते हैं कि श्रमहीन ज़िन्दगी में, जिसे भ्रमवश 'आराम की ज़िन्दगी' कहते हैं, सच्चे सुख के दर्शन होंगे। बेटियों और बहनों, कभी इस बेकार, निठल्लेपन और 'आराम की ज़िन्दगी' की इच्छा न करना। प्रकृति ने तुम्हें स्वस्थ शरीर दिया है इसलिए नहीं कि वह प्रदर्शनी में रखा जाय बल्कि इसलिए कि उससे जीवन का कर्त्तव्य पूरा हो। यह यौवन, नाड़ियों में दौड़ता लाल-लाल खून, चेहरे पर खेलता ओज यों ज़ंग लगाकर नष्ट कर देने के लिए नहीं हैं। यह सुरभित प्राणवायु से आन्दोलित जीवन हाथ पर हाथ दिये बैठ रहने के लिए नहीं है।

सन्तोष सुख की साधना का दूसरा मंत्र है। मानव की वासना का अन्त नहीं है। किस विन्दु पर जाकर वासना का अन्त हो जायगा या तुम तृप्ति का बोध करोगी, यह कहना कठिन, प्रायः असंभव, है। एक कामना पूरी होती है कि दूसरी आ खड़ी होती है। संसार के सभी वृक्ष कभी न कभी झड़ जाते हैं पर यह कामना-तरु सदा हरा-भरा रहता

**सन्तोष सुख की नींव है**

है। इस पर अतृप्ति की कोयल सदा कूकती रहती है। साधारण आदमी सोचता है--कहीं काम-काज लग जाय। काम-काज लगा कि मन कहने लगता है, रहने के लिए ठौर-ठिकाना हो जाय। फिर इच्छा होती है कि चार पैसे हो जाँय; फिर घर में दो बच्चे हों, फिर ब्याह-शादी,—मतलब इच्छाओं की शृंखला कभी नहीं टूटती। सब का यही हाल है। जो जितना ही 'बड़ा' है उसकी इच्छाएँ उतनी ही अधिक हैं। पर यह न सुख प्राप्त करने का तरीका है, न इसमें संस्कृति का आभास है। सुख वस्तुतः उसी को मिलता है जो सन्तोष करना जानता है। इसका यह मतलब नहीं कि मानव प्रयत्न करना छोड़ दे; इसका मतलब इतना ही है कि जब जो अवस्था हो उससे अच्छी अवस्था पर पहुँचने के लिए प्रयत्न तो अवश्य करे पर परिणाम—फल जो हो, उसकी चिन्ता न करे। हर हाल में मस्त रहे। याद रखो, तुम्हारे पास जो है वही तुम्हारे काम आयेगा। दूसरी की चिकनी-चुपड़ी से तुम्हें क्या मिलना है, तुम्हें तो अपनी रूखी-सूखी ही पर काम निकालना है। सुखकर, अधिक सुविधापूर्ण भविष्य के लिए प्रयत्न तो अवश्य करना चाहिए पर अपने वर्तमान को लेकर सुखी एवं सन्तुष्ट होने की तैयारी भी होनी चाहिए। भविष्य के काल्पनिक स्वर्ग के लिए ठोस वर्तमान की उपेक्षा कभी उचित नहीं।

नारी का गृहणी रूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह घर की रानी है। गृह ही उसका मुख्य कार्यक्षेत्र है इसलिए घर को व्यवस्थित रखना, उसे स्वच्छ, सुन्दर रखना उसका मुख्य कार्य है। याद रखो

घर कोई होटल नहीं है ; यह गृहस्थ जीवन की यज्ञशाला है। इसे सच्चा शान्तिसदन बनाना चाहिए, जहाँ दो घड़ी बैठकर तुम, तुम्हारे बच्चे एवं तुम्हारे गुरुजन सान्त्वना और शान्ति प्राप्त कर सकें।

युरोप में युगोस्लाविया एक देश है। यहाँ के एक प्रसिद्ध लेखक ने, जो विवाह को एक विज्ञान मानते हैं, दाम्पत्य जीवन के सुख के विषय में स्त्रियों को सलाह देते हुए लिखा है—

"एक स्त्री को अपने पति की माँ होना चाहिए अर्थात् उसकी इस प्रकार देख-रेख करनी चाहिए जैसे वह शिशु हो।

"उसे पति की पत्नी होना चाहिए, जिससे कोमलता एवं प्रेम की भूख की तृप्ति हो।

उसे सखा या साथी होना चाहिए जो आवश्यकता पड़ने पर, उसके लिए लड़ने—मरने तक को तैयार हो।

"उसे बन्धु होना चाहिए जो उसकी रुचियों एवं प्रवृत्तियों को समझ सके और उसके कार्य में सहायक हो।

"और यह सब करते हुए भी उसे अपने भिन्न व्यक्तित्व की रक्षा करनी चाहिए।"

उसने यह भी लिखा है कि पत्नी को भूलकर भी ईर्ष्या प्रकट न करनी चाहिए क्योंकि इससे पति अपनी स्वतंत्रता के लिए दुखी होगा। उसे पति को परेशान नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे यों ही कुछ कम चिन्ताएँ नहीं हैं। जब पति बात न करना चाहे तो उसे अलग छोड़ कर वहाँ से हट जाना चाहिए। उसे कभी न भूलना चाहिए कि

स्वच्छ, प्रकाशमान गृह एवं अच्छा और स्वादिष्ट भोजन दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं।

आज जब वातावरण में प्रतिहिंसा और स्वार्थ की बदबू है तब उस पर अपने प्रेम और त्याग की सुगंध फैला देना तुम्हारा काम है। आज जब सभ्यता के यात्री के मार्ग में काँटे बिछ रहे हैं तब अपनी कोमल मृदुल उंगलियों से काँटों पर फूल बिछा देना तुम्हारा काम है। तुमने आँधी-पानी में, दुःख-सुख में प्रेम की ज्योति को बुझने से बचाया है; तुमने जीवन को जीने योग्य बनाया है। तुमने पशुता में मनुष्यता का आविर्भाव किया; तुमने मृत्यु के विष पर जीवन के अमृत की वर्षा की। अनादि काल से विश्व के क्षितिज पर मानवता ने तुमसे प्रकाश की दीक्षा पाई है। जीवन में जो सुख है तुमसे है, जो मंगल है तुमसे है, जो सौन्दर्य है तुमसे है। तब क्या आज तुम अपना वह स्नेहदीपक महज़ इसलिए बुझ जाने दोगी कि पुरुष तुम्हारी ऊँचाई तक नहीं उठ पाया है? क्या मातृत्व के वरद अंचल की छाया सन्तति के सिर पर से इसलिए उठा ली जायगी कि वह तुम्हारे मातृत्व का यथोचित सम्मान करना अभी नहीं सीख पाई? नहीं, ऐसा नहीं होगा--कभी नहीं हुआ है। तुम्हें अपने गौरव से गिरना न होगा; तुम्हें अपने दान का पात्र खाली न करना होगा। एक बार फिर वही प्रेम की वाणी सुनने को हमारे प्राण प्यासे हैं; एक बार पुनः तुम्हारी मृदुल थपकियों से हृदय को विश्राम मिलेगा; तुम्हारे मातृत्व के ओजभरे हुँकार से

**प्रकाश और प्रेम की देवी**

अँधियारी के बादल छँट जायँगे और मानव पुनः तुम्हारे प्रकाश-दान में अपनी सुखद जीवन-यात्रा आरम्भ करेगा; अंधकार से प्रकाश की, दुःख से सुख की और प्रेय से श्रेय की यात्रा। हे गृहलक्ष्मी, तुम एक बार पुनः हमारे घरों में अवतीर्ण हो; हे कल्याणी, एक बार पुनः तुम्हारे स्नेह से हमारा हृदय रसपूर्ण हो। तब काँटों में फूल खिलेंगे और गृहस्थ जीवन धन्य होगा।

—०*०—